समर्पण

स्वर्गवासी पितृ-चरणों

की

पुनीत स्मृति

में

धन्यवाद !

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने तथा प्रकाशन में मुझे सहायता एवं सहयोग की परमावश्यकता थी, क्योंकि जिस विषय को लेकर मैंने पुस्तक की रचना की है, वह विशेष महत्वपूर्ण है और आयुर्वेदिक दृष्टिकोण के अनुसार इस विषय पर हिन्दी मे कुछेक ही पुस्तके हैं। फलतः मैंने इस पुस्तक को सब भाँति से उपयोगी बनाने के लिये अपने पूज्य गुरुदेव कविराज श्री नरेन्द्रनाथ जी मित्रा (सैदमिट्ठा बाजार लाहौर) से जो आवश्यक आदेश प्राप्त किये है, उसके लिये मै उनका विशेष आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त मेरे आदरणीय मित्र श्रीजयदेव विद्यालङ्कार, आयुर्वेदाचार्य्य तथा श्री रवि वर्मा जी उपप्रधान आर्यसमाज, उज्जैन ने जो संशोधन कार्य एवं पुस्तक को अनुकूल बनाने मे मुझे विशेष सहायता प्रदान की है इसके लिये मै अपने दोनों भाइयों का हृदय से आभारी हूँ। उक्त महानुभावों के अतिरिक्त उज्जैन निवासी ला० अमरनाथ जी तथा उनके भाइयों तथा धार निवासी डा० पुरुषोत्तम राव जी शर्मा, रिटायर्ड सिविल सर्जन और अध्यक्ष कला प्रेस, श्री पं० विश्वप्रकाश जी, प्रयाग आदि ने इस पुस्तक के छपवाने मे जो उदार हृदय से ऋण रूप मे धन की सहायता प्रदान की है उनका मै कोटिशः हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

—सत्यदेव वैद्य

लेखक के दो शब्द

इस संसार मे परम पिता परमात्मा ने एक अनुपम सुख की उत्पत्ति की है जिसका नाम दाम्पत्य सुख है। इसका अनुभव वे ही स्त्री-पुरुष अच्छी प्रकार कर सकते हैं जिनके शरीर निरोग हैं।

बड़े दुःख से लिखना पड़ता है कि आजकल की जितने भी सन्ताने देखने मे आ रही है निर्बल और अल्पायु हैं। इसका प्रधान कारण गर्भाधान के पूर्ण ज्ञान का न होना ही है।

गर्भाधान के विषय मे लिखना कोई सुगम कार्य नही। फिर भी मुझसे जहाँ तक बन सका अपने विचारों को शृङ्खलाबद्ध करके इस छोटी सी पुस्तिका मे रख दिया है तथा विषयों के सन्निवेश मे ऐसा प्रयत्न किया है जिससे प्रत्येक नर नारी लाभ उठा सके।

आज मै अपने ३० वर्षों के अनुभव के पश्चात् जिस पुस्तक का नाम गर्भाधान प्रकाश कई वर्षों से चला आ रहा था उसका पुरातन नाम कई उपयोगी कारणों से परिवर्तित, संशोधित तथा परिवर्धित भी कर अब उसका नाम सन्तति-निर्माण-शास्त्र रखकर आप लोगों की सेवा मे भेट कर रहा हूँ। इसमे

इन मुख्य-मुख्य विषयों पर प्रकाश डाला गया है। जैसे रजस्वला और गर्भवती का कर्तव्य, गर्भाधान के लिए निषिद्ध अवस्थायें, तिथियें, रात्रियें, अनुचित गर्भाधान से हानियाँ, रजस्वला और गर्भवती की चेष्टाओं का गर्भ पर प्रभाव, गर्भाधान के लिये मास, स्थान काल इत्यादि। जहाँ-जहाँ उचित समझा चित्र भी दिये हैं। मुझे पूर्ण आशा है कि आप इस अमूल्य पुस्तक को आदि से लेकर अन्त तक विचारपूर्वक पढ़ेंगे और इससे पूरा पूरा लाभ उठाकर अपने जीवन तथा मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

—कविराज सत्यदेव वैद्य

भूमिका

श्री सत्यदेव जी की बनाई हुई 'सन्तति-निर्माण-शास्त्र' नामक पुस्तक को मैंने पढ़ा। यह उपयोगी पुस्तक है। गृहस्थ में रहने वाले हर आयु के स्त्री और पुरुषों के लिये यह लाभप्रद होगी। विशेषकर उन युवा और युवतियों के लिये जो बिना किसी अनुभव के गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर रहे हैं। खेद का विषय है कि हमारे नौजवान उन बातों को नहीं जानते जो उनके दैनिक जीवन तथा सफल दिनचर्या के लिये आवश्यक है। इस पुस्तक के पढ़ने से यह कमी दूर होगी।

पुस्तक की भाषा सरल और रोचक है। बीच-बीच में भजन दिये हैं। अक्षर भी मोटे हैं। कम पढ़े लोग भी इसको पढ़ और समझ सकेंगे।

इलाहाबाद
२४ अप्रैल, १९६०

—गंगाप्रसाद उपाध्याय

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ

विपय | पृष्ठ

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पञ्चम अध्याय

छठा अध्याय

सातवाँ अध्याय

आठवाँ अध्याय

नौवाँ अध्याय

दसवाँ अध्याय

ग्यारहवाँ अध्याय

बारहवाँ अध्याय

—:o:—

सन्तति के निर्माण में, यत्नशील हैं जोय ।
वही जागते जगत में, शेष रहे हैं सोय ॥

इस कारण कर लीजिये, निज सन्तति निर्माण ।
जिससे सब संसार का, हो जाये कल्याण ॥

आये जो भी सन्तति, सौम्य मूर्ति गुणवान ।
परम भक्त हो ब्रह्म की, करे जो सबका मान ॥

इसमें अपना भी भला, सन्तति का उद्धार ।
सेवा जाति देश की, धर्मशास्त्र अनुसार ॥

पुस्तक का परिचय

इस सुन्दर शुभ ग्रन्थ में, जितने भरे विचार ।
निर्मल शुद्ध पवित्र हैं, जीवन के आधार ॥१॥
सत्य ज्ञान अरु धर्म का, भी है इस में सार ।
सद् सन्तति निर्माण का, है पूरण विस्तार ॥२॥
उत्तम सन्तति का करें, किस विध हम निर्माण ।
दर्शाया अति सरल पथ, जिससे हो कल्याण ॥३॥
स्वाध्यायी सत्संगी अरु, सदाचारी विद्वान ।
मात पिता की सेविका, नाना विध गुणवान ॥४॥
धर्मप्रिय, मधुभापि अरु, करे ब्रह्म से योग ।
वलकारी, उपकारी अरु, सुन्दर सदा निरोग ॥५॥
देश भक्त, प्रभु भक्त अरु, दीर्घ जीवी सन्तान ।
सब जीवों में आप सम, समझे आप समान ॥६॥
किस विध ऐसी सन्तति, हमें मिलेगी आन ।
इसका ज्ञान विज्ञान है, पढ़ कर पाइये ज्ञान ॥७॥
प्राण बचे अरु धन बचे, यश आदर भी होय ।
शोभा भी निश दिन बढ़े, दुख उपजे नहिं कोय ॥८॥
पढ़ विचार जो जन इन्हें, निज जीवन में लायं ।
सुख पावें संसार में, उत्तम सन्तति पायं ॥९॥
जो प्रेमी इस पंथ के, देत यही सन्देश ।
शुभ सन्तति जो तुम चहो, मान शास्त्र आदेश ॥१०॥

सन्तति-निर्माण-शास्त्र

प्रथम अध्याय

गर्भाधान और उसकी आवश्यकता

गर्भाधान उस परम पवित्र ईश्वरादेशित शुभ क्रिया का नाम है जिसके द्वारा इस महान संसार की वृद्धि होती चली आ रही है। यह क्रिया प्रायः सब स्थावर, जंगम, यथा पशु-पक्षी, कीट, पतंग, और मनुष्य मात्र में पाई जाती है। दूसरे शब्दों में इसका स्पष्ट अर्थ यह हो जाता है कि इसके बिना इस संसार का निर्माण ही असंभव है।

भेद केवल इतना ही है कि स्थावर वनस्पति आदि में गर्भाधान की क्रिया पृथक है तथा पशु पत्ती और मनुष्यों के गर्भाधान की रूप रेखा एक ही भांति की है। परन्तु पशु-पत्ती, कीट पतंग और मनुष्य जाति में ईश्वरीय न्याय नियम के अनुसार एक अन्तर और भी आ जाता है वह है ज्ञान और विज्ञान का। इसमें पशु पत्ती तो केवल संसार की वृद्धि तथा पूर्व जन्मकृत कर्म भोग भोगने के लिये ही गर्भाधान करते हैं। और—

मनुष्य जाति जहाँ अपने पूर्व जन्मकृत कर्मों का भोग भी भोगती है वहाँ पर साथ २ में वह अपने आगामी जीवन के निर्माण के लिये अपनी विवेक बुद्धि द्वारा शास्त्रोक्त परम पवित्र नियमों और आदेशों का पालन कर अपना आगामी सुन्दर से सुन्दर और सरल से सरल मार्ग भी बनाती है। अब हमें यह देखना है कि हमें कैसे गुणों, विचारों, भावों, और रंग रूप वाली सन्तान का निर्माण करना है जिससे कि हमारी सन्तान उत्तम से उत्तम बन अपने देश और जाति की सच्ची सेवा कर सके सो इन सब बातों का ज्ञान परम पिता परमात्मा ने वेद तथा धर्म-शास्त्रों में हमारे कल्याण के लिये कूट २ कर भर रक्खा है तथा साथ २ में हमें यह भी उपदेश दे रहे हैं कि—

परमात्मा का मनुष्यों को उपदेश

हे मनुष्यो ! मैंने तुम्हें तुम्हारे पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों के कारण यह अपार बुद्धियुक्त सुन्दर से सुन्दर मानव जीवन इस लिये सौंपा है कि तुम मेरी अपार कृपा और दया से प्राप्त पवित्र बुद्धि द्वारा अपना और अपनी आने वाला भावी सन्तान को उत्तम बनाकर इस महान संसार में स्वर्ग सुखों का आस्वादन करते हुए एक सौ वर्ष या इससे भी अधिक समय तक मेरी महती कृपा द्वारा विचरते हुए अपने आगामी जीवन का इससे भी अधिक कल्याण का मार्ग साफ़ कर सको। इसलिये मैंने धर्म की स्थापना और संसार की वृद्धि के लिये एक परम पवित्र परस्पर विवाह का नियम बांध कर तुम्हें इस संसार में भेजा है कि तुम मेरी कृपा और दया का आशीर्वाद प्राप्त कर दोनों दम्पति प्रेम पूर्वक गृहस्थाश्रम में रहते हुए मेरे बनाए संसार की मेरी आज्ञा द्वारा वृद्धि करो। यही वास्तव में मेरी उत्तम पूजा और विश्व कल्याण का मार्ग है। इसी में ही तुम्हारे जीवन का भी परम कल्याण है।

परन्तु आज का संसार इस परम पवित्र विवाह के वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य को न मान कर अपनी मलिन

बुद्धि के कारण अपने कल्याण के मार्ग को त्याग कर बड़ी ही तीव्र गति से अपने को उन्मार्ग (उलटे मार्ग) में ले जा रहा है।

हे मेरे बच्चो ! यह विवाहरूपी पवित्र कर्म कोई खेल तमाशा नहीं, कोई राग रंग नहीं प्रत्युत यह दोनों दम्पत्तियों के पवित्र हृदयों को एक सूत्र में बाँधने का एक अनमोल साधन है।

जैसे जल में जल, अग्नि में अग्नि, और आकाश में आकाश मिल कर एक हो जाते हैं जिसे फिर कोई भी पृथक २ नहीं कर सकता, इसी प्रकार विवाह के समय से तुम दोनों ने अपने पृथक २ हृदयों को इस प्रकार के प्रेम के सूत्र में गठित कर देना है अथवा दो, जलों के समान विलीन कर देना है कि जिसे फिर कोई भी बाधक शक्ति तुम्हारे हृदयों को पृथक २ न कर सके।

इसीलिये ही तो विवाह में जो गठबन्धन की परम पवित्र रीति वैदिक ग्रन्थों में मैंने वर्णन की है वह तुम्हें स्पष्ट रूप से दिन रात शिक्षा दे रही है कि तुम दोनों दम्पति अपनी निर्मल और सात्विक विचार बुद्धि द्वारा अपने सच्चे प्रेम की विद्या का अध्ययन कर अपने मानवीय पवित्र धर्म और कर्तव्य को समझो।

वैदिक विवाह के विषय में महात्मा गान्धी जी के शब्द

इसके विषय में हमारे पूज्य महात्मा गान्धी जी ने अपने एक लेख मे लिखा है कि वैदिक विवाह स्त्री पुरुष के हृदयों को दूषित वासनाओं से शुद्ध कर देने और उन्हें ईश्वर के अर्थात् अपने कर्तव्य कर्म के अधिक निकट पहुँचाने में एक परमोत्तम साधन है।

इसलिये हे भाइयो! जो नर नारी अपनी विवेक बुद्धि द्वारा ईश्वरादेशित अपने वास्तविक दाम्पत्य प्रेम को पहिचान लेते हैं अर्थात् एक दूसरे पर सच्चा विश्वास रखते हुए परस्पर की सेवा को अपना परम कर्तव्य और धर्म समझ लेते हैं तो उनका समस्त जीवन एक सुमधुर और सुख कारक जीवन बन जाता है और फिर दोनों का जीवन संसार में परम शान्ति स्वर्ग और देवलोक के सुखों का आनन्द अनुभव करता है।

इसलिये ही तो प्राचीन काल में स्वयम्बर की सुन्दर रीति प्रचलित थी जिससे कि जिस लड़की और लड़के को परस्पर विवाह करना होता था वह अपने २ गुण कर्म और स्वभाव के अनुसार ही अपने सदा साथ रहने

वाले साथी या सहधर्मिणी को चुनते थे जिससे जीवन भर एक दूसरे के सच्चे मित्र बन सुन्दर गुणों वाली उत्तम सन्तान उत्पन्न कर सकें।

गृहस्थियों के लिये प्रथम धर्म

इसलिये गृहस्थ जीवन में रहते हुए गृहस्थी के लिये सबसे पहिला धर्म अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन यह होना चाहिये कि अपने घर में सत् सन्तति का निर्माण कर देश और जाति का कल्याण करे। यह उपकार वही गृहस्थी लोग कर सकते हैं जो कि सत् सन्तति निर्माण करना अपना परम ध्येय या लक्ष्य समझते हैं तथा उसके साधनों को प्राप्त करने में दिन रात संलग्न हैं। क्योंकि जब तक साधनों का ज्ञान प्राप्त न कर लिया जाय तब तक साध्य की प्राप्ति होना असंभव है।

शास्त्र तथा विचारशील पुरुषों का कहना है कि उत्तम सन्तति निर्माण का यदि कोई भी उत्तम से उत्तम साधन है तो वह ब्रह्मचर्य का पालन है। याद रहे कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत के साधन पर ध्यान नहीं रखते अर्थात् उसकी रक्षा न कर के केवल काम-वासना के अधीन रहते हैं वह कभी भी उत्तम सन्तान की प्राप्ति नहीं कर

सकते क्योंकि प्रकृति के नियमानुसार यह दोनों भाव एक दूसरे के विपरीत गुणों वाले हैं।

अतः जो बात सत्य है, ज्ञान युक्त है, धर्म युक्त और सर्वदा सुखदायक है वह मनुष्य के लिये ग्राह्य है तथा जो असत्य और अज्ञान से युक्त है, धर्म और न्याय के विरुद्ध है शास्त्र कहता है कि वह कभी भी मनुष्य को अपने जीवन में ग्रहण नहीं करनी चाहिये।

जहाँ तक हम अपनी ज्ञान-दृष्टि उठा कर देखते हैं हमें यही प्रतीत होता है कि आज के युग में पठित नर नारियों की अपेक्षा अपठित लोगों की संख्या कई गुना अधिक है जिसके फल स्वरूप उन अपठित लोगों को इस बात का कुछ भीं ज्ञान नहीं कि हमारी ये इतनी बड़ी देह किन २ वस्तुओं से बनी है, किसके आश्रय स्थित है, उसका क्या नाम तथा क्या कार्य है। तथा—

इसी प्रकार इसका क्या स्वरूप तथा वह भगवान सर्व शक्तिमान ने हमें क्यूं दिया है, उससे इस संसार भर के जीवधारी प्राणियों का कल्याण कैसे होता है और उसकी हमें रक्षा और वृद्धि कैसे करनी चाहिये।

इसलिये उस सारभूत अनमोल वीर्य रूपी रत्न का निर्माण इसका कार्य और परम पवित्र महिमा का इस

पुस्तक के आरम्भ में कुछ वर्णन कर देना मैं उचित समझता हूँ। जो कि उत्तम से उत्तम स्वस्थ और सुन्दरता से परिपूर्ण सन्तान के निर्माण का आयुर्वेद शास्त्र ने प्रधान साधन वर्णन किया है।

उत्तम सन्तानहित ब्रह्मचर्य की आवश्यकता

हमारे धर्म और वैदिक शास्त्रों का कथन है कि जो नर-नारी अपने को स्वस्थ, निरोग, बलशाली, धर्मात्मा, विद्वान, ज्ञानी, ईश्वर भक्त, विवेक बुद्धि से भक्त, चरित्रवान, तथा सद् सन्तति और दीर्घजीवी सन्तान से ओत प्रोत देखना चाहते हैं तो उनके लिये केवल आवश्यक ही नहीं प्रत्युत परमावश्यक है कि वह अपने सम्पूर्ण जीवन में यथाशक्ति ब्रह्मचर्य की रक्षा करते रहें क्योंकि उपरोक्त सब सिद्धियों का देने वाला और मूल कारण एक ब्रह्मचर्य ही हेतु है जिसके लाभों का ज्ञान होना प्रत्येक मानव के लिये अति आवश्यक है।

ब्रह्मचर्य के अर्थ

ब्रह्मचर्य दो टुकड़ों के मेल से बना है एक ब्रह्म और दूसरा चर्य। इसमें ब्रह्म शब्द का अर्थ है ब्रह्म (परमात्मा) और वीर्य।

इसी प्रकार चर्य का अर्थ है एक विचरण दूसरा रक्षण इत्यादि। इस नियमानुसार ब्रह्मचर्य का अर्थ हुआ ब्रह्म में विचरना तथा परम पिता परमात्मा के प्रति निष्ठा का धारण करना और दूसरा अर्थ है वीर्य रक्षा अर्थात् यत्न पूर्वक अपने वीर्य की रक्षा करना। एक सज्जन पुरुष का कहना है कि—

कायेन मनसा, वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनं त्यागी ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥

अर्थात जो मनुष्य अपने मन वाणी और देह द्वारा हर काल और प्रत्येक अवस्था में मैथुन का त्याग कर यथाशक्ति अपने वीर्य का पूर्ण संयम और तप द्वारा संचय करता है अर्थात् उसे चंचलता से हटा कर स्थिरता में रखता हुआ केवल सन्तानोत्पत्ति की कामना से उसका प्रयोग करता है अर्थात् सपत्नी संग करता है वास्तव में शास्त्रों के कथनानुसार वही सच्चा ब्रह्मचारी है अर्थात् ब्रह्मकर्म में विचरने वाला कहा गया है।

वीर्य की उत्पत्ति

रसाद्रक्तं ततो मांस मान्सान्मेदा प्रजायते।
मेदस्यास्थितो मज्जा मज्जाया शुक्र सम्भवः॥

सुश्रुताचार्य अपने सुश्रुत संहिता में लिखते हैं कि—जो कुछ भी हम भोजन करते हैं उसके पाक होने पर अर्थात् पच जाने पर सबसे प्रथम हमारे शरीर में प्रथम के पाँच दिनों में उसका एक रस-रूप रस का निर्माण होता है तथा पुनः उस रस के परिपाक होने पर उससे अगले पाँच दिनों में एक लाल रंग का रक्त तैयार होता है इसी न्याय नियमानुसार उत्तरोत्तर पाँच पाँच दिनों में माँस, मेद, मज्जा, अस्थि क्रमशः तैयार हो कर सबके अन्त में वीर्य बनता है। इस प्रकार हमारे किये भोजन के वीर्य बनने तक लगभग ३५ दिन लग जाते हैं।

शरीर निर्माण की क्रिया को जानने वाले चिकित्सकों का कहना है कि मनुष्य के आधे सेर रक्त से एक बूंद वीर्य का निर्माण होता है जो कि एक दूधिया रंग की गाढ़ी तथा लेसदार वस्तु होती है।

स्त्री जाति में यह वीर्य रज नाम से पुकारा जाता है और पुरुषों में इसे वीर्य या धातु शब्द से सम्बोधित करते हैं। इसी रज वीर्य के आश्रय से ही मनुष्य की सब शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ अपने अपने स्थान पर अपना अपना कार्य कर रही हैं। यदि इसकी एक बूंद भी कपड़े के किसी स्थान पर गिर जाती है तो उस स्थान को यह

कड़ा कर देती है। इसीलिये शास्त्रों ने इसे मनुष्य के शरीर का आधार स्थान बतलाया है तथा इसी के द्वारा हमारे शरीर मे तेज, ओज, बल, प्रताप, कान्ति, सौन्दर्य और प्रकाश का निर्माण होता है।

ब्रह्मचर्य महिमा के विषय में धन्वन्तरि ऋषि के शब्द

आयुर्वेद शास्त्र में वीर्य का जो उत्तमोत्तम भाग अर्थात् जो वीर्य का भी सार होता है उसको ओज नाम से पुकारा गया है। इसका दूसरा नाम महाबल भी कहा गया है। ज्यों ज्यों मनुष्य के शरीर में इस महाबल की वृद्धि होती चली जाती है त्यों त्यों मानव शरीर में उत्तम कार्यों में उत्साह, पराक्रम, धीरज, लावण्यता, आत्म शक्ति, सर्वोत्तम प्रेम और निर्भयता आदि गुणों का विकास होता चला जाता है।

आयुर्वेद के आचार्य श्री धन्वन्तरि जी महाराज आयुर्वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुये कहते हैं कि एक ब्रह्मचर्य ही मनुष्य को मृत्यु के भयानक भय, अनेकानेक रोग और बुढ़ापे से बचाने वाला अमृत रूप साधन है जो कि मनुष्य को परम शान्ति,

स्मृति, नाना प्रकार का ज्ञान, आरोग्यता और सुन्दरता देता हुआ सुदृढ़ और चिरजीवी सन्तति प्रदान करता है जिससे कि उसका जीवन आदर्शमय जीवन बन जाता है।

देखिये ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करते हुये शास्त्र कहते हैं कि—

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

आयुर्वेद तथा तत्वज्ञानियों का कहना है कि जिस भांति एक छोटे से बीज में वह महान वृक्ष जो कि अनेकानेक टहनी पत्ते और फल फूलादि से परिपूर्ण है समाया हुआ है ठीक इसी प्रकार वीर्य की एक एक बूंद के लाखवें भाग मे हर एक मनुष्य का सारा शरीर स्थित है तथा उसके भाव विचार बुद्धि और कर्म भी विद्यमान रहते हैं।

इसलिये इसकी संयम और तप द्वारा रक्षा करना मनुष्य का सच्चा धर्म और कर्म कहा गया है। जो मनुष्य अपनी अल्प बुद्धि से इसे नष्ट कर देते हैं या इसे भोग्याधिक से निर्बल बना डालते हैं याद रहे कि उनका यह सुन्दर शोभा शाली शरीर शीघ्र नाश हो जाता है। याद रहे कि—

जो जन भोग्याधिक्य से, करें धातु का नाश।
तेज ओज बल शक्ति फिर, आयें न उसके पास॥
और न हो शुभ सन्तति, उपजे नाना व्याध।
क्रोध बढ़े, भय मन रहे, चिन्ता बढ़े अगाध॥
वेदादि इस हेतु से, रहे हमें समझाय।
ब्रह्मचर्य व्रत के बिना, लाभ न कोउ पाय॥
ब्रह्मचर्य शुभ रत्न का, करोगे जितना मान।
उतने शोभा ज्ञान के, पाओगे तुम दान॥
निर्दयता से जो करें, निज धातु का नाश।
भला वे कैसे रख सकें, सद् सन्तति की आश॥

ब्रह्मचर्य महिमा के विषय में भगवान शंकर के वचन

'मरणं बिन्दु पातेन जीवनं बिन्दु धारणात'

अर्थात् वीर्य की एक बूंद का नष्ट कर देना मृत्यु तथा उसकी एक २ बूंद की रक्षा करना मनुष्य का सच्चा जीवन है। याद रहे कि हमारे देश के जितने भी शूरवीर, योद्धा, धर्मात्मा, महात्मा और ईश्वर भक्त हुए हैं इसी के प्रताप, बल और आश्रय पर ही हुए हैं। इस अनुभव के जानने वालों का कहना है कि—

सार तत्व जो देहि में, सब इसके आधार।
जो इसका पालन करें, वही सुखी अपार ॥१॥
मेधा भी इस से बढ़े, हो शक्ति संचार।
साहस, बल, पौरुष बढ़े, शुद्धाचार विचार ॥२॥
आयु हो शत वर्ष तक, अंग रहें बलवान।
ज्ञान, ध्यान इस से मिले, हो उत्तम सन्तान ॥३॥
नारायण से प्रीत हो, देही रहे निरोग।
कीर्ति, शोभा, यश मिलें, मन के भागें सोग ॥४॥
शूरों का राजा यह, वीरों का है तेज।
योद्धाओं का आश्रय, प्रभु भक्तों की सेज ॥५॥
धर्म कर्म का मूल ये, स्वर्ग भवन का द्वार।
दाता श्रद्धा प्रेम का, इसको सदा विचार ॥६॥
सकल तपों में तप यही, अष्टसिद्धि दातार।
जिसने इसको वश किया, उनको देव विचार ॥७॥
स्वास्थ शास्त्र सब दे रहे, हमें यह व्याख्यान।
ब्रह्मचर्य पालन करो, जो चाहो कल्याण ॥८॥

धर्म-शास्त्रानुसार ब्रह्मचर्य की महिमा

शास्त्र कहता है कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से मनुष्य के सभी प्रकार के आभ्यन्तरी भाव निर्मल, शुद्ध,

और पवित्र बन जाते हैं जिससे फिर सत्संग, स्वाध्याय और सद्पुरुषों के उपदेशों में उसकी रुचि विशेष रूप से बढ़ जाती है और उसका अज्ञान अन्धकार दूर हो बुद्धि में परम पवित्र प्रकाश का उदय हो जाता है।

इस प्रकार जो नर-नारी ब्रह्मचर्य के अर्थ, उसकी उत्पत्ति, तथा इसकी अनमोल महिमा को जानकर ईश्वरादेशित गृहस्थ धर्म में निवास कर सद् सन्तति का निर्माण करते हैं वास्तव में वही मनुष्य कहलाने योग्य होते हैं तथा मानवीय कर्तव्य कर्म को जानने वाले और ब्रह्म उपासक कहे गए हैं।

संचय कर धन वीर्य का, करें जो गर्भाधान।
निम्नलिखित सन्तान का, उन्हें ही मिलता दान॥
वीर, धीर जो हो सदा, और अती बलवान।
रण भूमी में सर्वदा, गर्जे सिंह समान॥
मन निर्मल हृदय सरल, सब से राखे स्नेह।
सेवा पर उपकार कर, नाम तनिक नहिं लेय॥
पालन के ब्रह्मचर्य पर, नहीं देते हैं ध्यान।
नहीं स्वप्न में वे कभी, पाते शुभ सन्तान॥

इसलिये हे भाई और बहिनों! यदि वास्तव में देखा जाय तो यह गर्भाधान क्रिया हमारे जीवन, हमारी

उन्नति, हमारे स्वास्थ्य तथा हमारे धर्म पालन का एक मूल मंत्र है। इसी के द्वारा हम अपनी इच्छा के अनुसार उत्तम से उत्तम सन्तान पैदा कर अपने देश, जाति और धर्म की रक्षा करते हुए एक महान और एक अनमोल निधि को प्राप्त कर सकते हैं।

यह बात सिद्ध और स्पष्ट है कि हर एक जीवधारी को जितना अधिक से अधिक प्रेम केवल अपनी सन्तान से होता है उतना प्रेम अन्य किसी भी भौतिक वस्तु में नहीं मानता। या यूं कहो कि संसार के सब उत्तम से उत्तम या बा बड़े से बड़े ऐश्वर्य जैसे स्त्री, धन, यश, मान, शासन तथा सुन्दर से सुन्दर महल आदि सन्तान के सन्मुख फीके हैं, नीरस हैं क्योंकि मन की अति प्रसन्नता इनसे इतनी नहीं होती जितनी कि निज सन्तान से और तिस पर भी उत्तम और गुणी सन्तान से होती है।

सच पूछो तो जिनके घर सन्तान नहीं उनका घर अन्धकारमय सूना प्रतीत होता है। वास्तव में देखा जाय तो सन्तान इस संसार रूपी मनोहर वाटिका का एक सुमधुर फल है तथा इस संसार रूपी सागर का एक मनोहर रत्न है।

गर्भाधान का स्वरूप

अभी अभी ऊपर के प्रकरण में कहा जा चुका है कि संसार का विकास या वृद्धि गर्भाधान की क्रिया पर ही निर्भर है। इसलिये अब हमें यह जानना है कि गर्भाधान का स्वरूप क्या है। उससे संसार की वृद्धि कैसे होती है। और भगवान ने अपनी अन्य पूजाओं के साथ-साथ इसे भी अपनी पूजा वर्णन करते हुये ऊँचे आसन पर किस कारण सुशोभित किया है। तथा शास्त्रों ने भी इसे एक अत्युत्तम और पवित्र कार्य क्यों कहा है ?

"गर्भास्याऽधानं वीर्य स्थापनं स्थिरि करणं
यस्मिन्मेवा कर्मणा तद् गर्भाधानम्"

गर्भ का धारण अर्थात् वीर्य स्थापन—गर्भाशय में स्थिर करना जिसमें या जिससे होता है उसे गर्भाधान कहते हैं। अथवा जिस समय दोनों दम्पति अर्थात् पति पत्नी भौतिक प्रेम के वशीभूत होकर परस्पर सन्तानोत्पत्ति के लिये संभोग करते हैं। तब पुरुष का वीर्य स्त्री के गर्भाशय में चरित होता है फिर वहाँ पर उस वीर्य में चलने वाले अनगिनित कीटाणुओं में से कर्म भोगानुसार कोई एक कीटाणु चलता हुआ स्त्री के रज के कीटाणुओं के साथ मिश्रित हो स्त्री के गर्भाशय में पहुँच जाता है और शेष वीर्य शेष बचे कीटाणुओं को साथ लेकर योनि द्वार से बाहर निकल जाता है। गर्भाशय में पहुँचे हुए कीटाणुओं से ही गर्भ की उत्पत्ति अर्थात् वृद्धि आरम्भ होती है इसे ही शास्त्रों ने गर्भाधान नाम से पुकारा है।

क्योंकि इस कार्य से परमात्मा के बनाये संसार की वृद्धि होती है। तथा लोग अपने पूर्व जन्मों में कृत कर्मों का भोग भोगते हुये अपनी विवेक बुद्धि तथा ईश्वरादेशित पवित्र कर्मों द्वारा अपने आगामी पवित्र जीवन का निर्माण करते हैं। इस सेवा कर्म को सर्वशक्तिमान भगवान अपनी पूजा समझता है।

गर्भाधान के लिये सबसे प्रथम पवित्र भूमि की आवश्यकता

जैसे खेती करने वाला किसान या माली भी उसी भूमि में अनाज अथवा फलों के बीजों को डालते हैं जो भूमि उपजाऊ और कूड़ा कर्कट तथा पत्थर आदि से रहित हो जिससे खेती अथवा वाटिका में लगाए फल फूल उत्तम बन सकें।

जैसे खेती के लिये शुद्ध और उपजाऊ भूमि की सब से प्रथम आवश्यकता होती है ठीक इसी प्रकार मानव सन्तति रूपी उत्तम फल प्राप्त करने के लिये भी आवश्यक है कि स्त्री की गर्भाशय रूपी भूमि भी सबसे पहिले शुद्ध, स्वस्थ और निरोग हो जिससे उसमें डाला हुआ बीज पूर्ण रूप से वृद्धि को प्राप्त हो सके।

इसलिये अति आवश्यक है कि स्त्री गर्भाधान के लिये प्राकृतिक नियमानुसार पहिले अपने गर्भाशय को मासिक धर्म द्वारा शुद्ध कर ले जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे चल कर किया जायगा।

ऋतु धर्म का क्या स्वरूप है और उसके प्रतिमास आने का प्रकृति देवी ने किस लिए यह नियम बांधा है।

उत्तम खेती हित पाँच साधन

देखिये खेती को उपजाऊ और फलवान बनाने के लिये प्रकृति देवी ने मोटे मोटे पाँच प्रकार के साधनों का प्रयोग किया है जिनका नीचे विस्तार पूर्वक वर्णन किया जाता है।

साधन उत्तम पाँच हैं, उत्तम फल के हेत।
सुनो विचारो प्रेम से, हो कर जरा सचेत॥
भूमि शुद्ध पवित्र हो, खाद अति गुणवान।
समय ऋतु अनुसार हो, बीज बहु बलवान॥
जो सींचे जल खेत को, वह भी उत्तम होय।
जिससे ऐसा फल मिले, जिसमें दोष न कोय॥
यही तो विधि विधान है, प्राकृत के अनुसार।
जो इससे उलटा चले, रहे दुखी संसार॥

देखिये उपरोक्त पाँचों साधनों में सबसे प्रथम उस पवित्र और उपजाऊ भूमि को स्थान दिया गया है जो कि सब प्रकार के कङ्कड़, पत्थर और कूड़ा कर्कट आदि से सर्वथा रहित हो जिसमें कि डाला हुआ बीज स्वाधीनता अनुसार अपनी वृद्धि का कार्य बिना किसी रोक टोक के सुगमता से कर सके।

दूसरे स्थान पर उस उत्तम खाद का वर्णन किया गया है कि जो जितनी भी उत्तम खाद होगी वह उतनी ही भूमि को उर्वरा बनाने में सहायक होगी जिससे भूमि उस खाद से सहायता प्राप्त कर बीज को विकास की ओर ले जाने में अत्यधिक समर्थ होगी।

अपनी २ बारी के अनुसार तीसरा स्थान प्रकृति माता ने समय को अर्थात् ऋतु को सौंपा है। देखिये जिस अनाज वा सब्जी आदि के पैदा होने का जो समय होता है किसान या माली उसी समय पर ही उसे बोता है। तभी वह अनाज अथवा सब्जी आदि अपने पूर्ण रस और सुन्दरता को लिये हुए आते हैं।

याद रहे कि जो अनाज या सब्जियां बिना समय पर बोई जाती हैं प्रथम तो उसमें फल ही नहीं आता, यदि किसी कारणवश या कुछ भी समय की अनुकूलता उन्हें मिल जाय तो उसकी पूर्ण वृद्धि न होकर अपने रस, शोभा और गुणों से सर्वथा रहित होते हैं।

इससे सिद्ध हुआ कि जो बीज अपने समय पर बोया जाता है वही अपने पूर्ण फल का दाता होता है। इसी सिद्धान्तानुसार चतुर और बुद्धिमान कृषिकार अपने अच्छे

और कीमती बीज को बिना ऋतुकाल में बोकर नष्ट नहीं करते प्रत्युत उसे समय पर ही बोकर उत्तम फल प्राप्त करते हैं।

चतुर्थ नम्बर उस बीज को दिया गया है जो कि घुन आदि से सर्वथा निर्दोष हो। याद रहे कि अच्छा बीज ही अपने पूर्ण बल को लिये हुए पूर्ण फल को प्राप्त होता है।

अन्त में पाँचवां स्थान प्रकृति ने जल को अर्पण किया है जिससे कि समय २ पर बीज को सिंचित कर उसे वृद्धि का रूप देना है।

आप अपने जीवन में देख रहे हैं और अनुभव भी हमें यही बतला रहा है कि जिस खेती या वाटिका को जल किसी भी कारण से नहीं पहुँच पाता या जितना जल पहुँचना चाहिये उसमें कुछ न्यूनता रह जाती है तो वह खेती पूर्णरूप से फूलती फलती नहीं प्रत्युत अधूरी रह जाती है। परन्तु जिस खेती को वर्षा, नहर अथवा कूप आदि का जल समय २ पर मिलता रहता है वह खेती उन जलों के गुणों को अपने भीतर ग्रहण कर फलती फूलती रहती है।

पृथक २ जलों से खेती में भी पृथक २ प्रभाव

याद रहे कि जो खेती वर्षा के जल द्वारा फूलती फलती है वह वर्षा के उत्तम और निर्मल जल के कारण उत्तम गुण वाली होती है। तथा जिस खेती को नहर आदि के जल से सींचा जाता है उसको मध्यम गुण वाली खेती कहा गया है क्योंकि उसमें जो वर्षा के जल में सुन्दर गुण होने हैं उन गुणों से अल्प होती है।

इसी प्रकार अनावृष्टि के कारण जिन खेतों में कूपों के जल से सिंचन करके फल लाया जाता है वह साइंस वेत्ताओं के कथनानुसार अपनी शक्ति, बल, सामर्थ्य, सुन्दरता और रस में कम पाई जाती हैं। इस लिये जिस २ खेती को जैसे जैसे भी गुणों वाला जल मिलता है खेती भी ठीक वैसे २ गुणों वाली ही होती है। ऐसा प्रकृति का न्याय नियम है।

निम्नलिखित दृष्टान्त से हम जान जायेंगे कि उत्तम मध्यम और अधम जलों की संगति से खेती कैसे उत्तम मध्यम वा अधम गुण को प्राप्त होती है।

आजकल प्रायः देखा जा रहा है कि बड़े २ शहरों में शहर के गन्दे नालों के जल से ही सब्जी आदि की

खेती हो रही है। याद रहे कि ऐसी खेतियों में जो सब्जियां आदि फूलती फलती हैं उनमें जो अपना स्वाभाविक गुण-कारी रस होना चाहिये वह नष्ट हो जाता है जिससे कि उनके खाने में हमें पूर्ण स्वाद नहीं आता।

यह बात शास्त्र सिद्ध है कि जिसको जैसी अच्छी अथवा बुरी संगत मिल जाती है वह ठीक वैसा ही उसके गुण अवगुण वाला अर्थात् अच्छा अथवा बुरा बन जाता है। प्रभु प्रेम प्रकाश नामक पुस्तक के सत्संग के प्रकरण में पाठ आया है कि संगत का फल कैसा होता है।

फल अच्छा अथवा बुरा, संगत के आधीन।
कदली वंश अरु सीप में एक बूंद गुण तीन ॥

इससे सिद्ध हुआ कि संगत का फल अवश्यमेव होता है जिसको कोई भी मेट नहीं सकता।

उत्तम खेती के पाँच साधनों की भांति मनुष्य रूपी फल प्राप्त करने के लिये भी पाँच साधनों की आवश्यकता

आयुर्वेदिक शास्त्र कहता है कि जो पाँच नियम प्रकृति माता ने अनाज और सब्जी आदि के उत्तम फल

प्राप्त करने के लिये अपने न्याय नियम में बाँध रक्खे हैं ठीक वही के वही पाँचों नियम उसी क्रमानुसार मानव रूपी उत्तम फल प्राप्त करने के लिये भी मनुष्यों पर लागू होते हैं।

इसलिये जो नर नारी अपनी विवेक बुद्धि द्वारा सृष्टि के नियमानुसार उपरोक्त पाँचों बातों पर ध्यान देते हुये अपने अनमोल जीवन को चलाते हैं वास्तव में वही उत्तम से उत्तम सन्तति रूपी मधुर फलों को प्राप्त करते हैं।

इसलिये सन्तानोत्पत्ति के इच्छुकों को भी चाहिये कि उत्तम सन्तान के हेतु सबसे प्रथम प्रकृति नियमानुसार मासिक धर्म द्वारा स्त्री की गर्भाशय रूपी भूमि को शुद्ध होने दें जिससे कि वह निर्दोष हो जाय।

इस प्रकार जब मासिक धर्म अपने चार दिनों की अवधि के बाद अपने गन्दे प्रवाह को बन्द कर दे अर्थात् गर्भाशय को पूर्ण रूप से शुद्ध कर चुके तो पुरुष को चाहिये कि फिर उस ऋतुस्नाता स्त्री रूपी भूमि में अपने मधुर और प्रेम रस से भरे शब्दों रूपी खाद का प्रयोग करे अर्थात् बोलचाल जो भी करे वह मधुर और प्रेममय हो जिससे कि उसका मन प्रेम के शब्दों से प्रफुल्लित

हो उठे। जितना भी प्रेम रूपी खाद का स्त्री में संचार होगा उतना ही उसके मन को उर्वग बना देगा जिसके फलस्वरूप उतनी ही उत्तम सन्तान की प्राप्ति होगी।

याद रहे कि जिस खेती में खाद का प्रयोग नहीं किया जाता वह उत्तम फल नहीं दे सकती अतः उत्तम सन्तान पैदा करने के लिये प्रेम रूपी खाद की अति आवश्यकता होती है।

इसके उपरान्त प्रकृति नियमानुसार तीसरा साधन ऋतु अर्थात समय का है अर्थात् शास्त्रोक्त जो ऋतुकाल की सोलह रात्रियाँ गर्भाधान के लिये निश्चित और श्रेयस्कर हैं उनमें निन्दित अष्ठ रात्रियों का त्याग कर शेष अति लाभदायक आठ रात्रियों में विचार बुद्धि से गर्भाधान करना, वीर्य रूपी बीज का बोना अति उत्तम सन्तान का शास्त्रों ने मूल तत्व बतलाया है।

उत्तम खेती के समान उत्तम सन्तान रूपी फल प्राप्त करने के लिये यहाँ पर बीज के स्थान पर वीर्य शब्द से तात्पर्य है जिसके द्वारा सन्तान का निर्माण होता है। इस लिये यह वीर्य अति स्वच्छ, शुद्ध, बलवान और पूर्णरूप से स्वस्थ और निरोग होना चाहिये।

आयुर्वेद सदा पुरुषों को यही उपदेश दे रहा है कि हे पुरुषों अपने सम्पूर्ण जीवन को संयम और व्रत द्वारा ब्रह्मचर्य की रक्षा करते हुये भगवद् कृपा से प्राप्त अनमोल वीर्य को ऐसा बनाते रहो जो कि अति श्वेत, गाढ़ा, चिपचिपा और विशेष गन्ध से युक्त हो तथा साथ साथ में उसकी प्रतिक्रिया अम्ल और क्षार युक्त न हो। जब तुम ऐसे उत्तम वीर्य रूपी बीज को गर्भाशय रूपी भूमि में डालोगे तो निश्चय ही तुम उत्तम और निरोग सन्तान के अधिकारी बन सकोगे।

इसके बाद उत्तम खेती के लिये पाँचवा साधन जल को कहा गया है। यहाँ पर उत्तम सन्तान के लिये पाँचवा साधन जल के स्थान पर उत्तम आचार विचार, उत्तम खान पान, सत्संगत और स्वाध्याय को कहा गया है जिसके द्वारा गर्भस्थ बच्चे का शरीर, मन, इन्द्रियाँ और सद् विचारों का पोषण होता है। अर्थात गर्भकाल में जितनी भी ये चारों बातें वर्ताव में अधिक लाई जायेंगी उतनी ही ये उत्तम गुणों से युक्त सन्तान की दाता होंगी। इस सुन्दर और उत्तम जल के गुणों का विशेष विवरण यथास्थान आगे चलकर किया जावेगा।

जो दम्पति करते सदा, सत्संगत स्वाध्याय।
जप तप सेवा दान अरु, पर उपकार कमाय ॥१॥
भोजन भी उत्तम करें, नित्य समय अनुसार।
जिससे बल पुष्टि बढ़े, बढ़े बुद्धि भण्डार ॥२॥
आती उस घर सन्तति, धर्म प्रिय गुणवान।
प्रेमी सत्याचार की, जग भर में यशवान ॥३॥
इस कारण करते रहो, सत्संगत स्वाध्याय।
जिससे गन्दे भाव की, मैल सभी कट जाय ॥४॥

देखिये साधारण बुद्धि रखने वाला कृषिकार भी उत्तम फल की प्राप्ति के लिये केवल उत्तम से उत्तम बीज की तलाश में ही नहीं रहता प्रत्युत पशु-पक्षी आदि में भी यह बात पाई जाती है कि वह अच्छी जाति के पशु-पक्षी आदि को ही अपनी सन्तानहित ढूँढ़ते हैं।

हम तो फिर भी भगवद् कृपा से भगवद् द्वार से प्राप्त बुद्धि रखने वाले मनुष्य हैं। और अपनी उत्तम सन्तान हित अपना अच्छा बुरा स्वयं विचार सकते हैं तो हम अपनी भलाई का कार्य अपनी विचार बुद्धि से विचार कर क्यों न करें।

उपरोक्त लेख के अनुसार स्पष्ट प्रतीत हो गया है कि हम जितना भी उत्तम से उत्तम बीज और उस बीज

को सिंचित करने वाले सत्संगत, स्वाध्याय आदि जलों का प्रयोग करेंगे उतना ही हम अपनी उत्तम सन्तान रूपी फल को प्राप्त कर सकेंगे।

परन्तु बड़े आश्चर्य और खेद से लिखना पड़ता है कि हम भगवान सर्वशक्तिमान की दया से प्राप्त की हुई पवित्र बुद्धि से इस उत्तम विषय के लिये कुछ भी काम नहीं लेते। अर्थात् अपनी प्राणप्रिय सन्तान को भी उत्तम बनाने के लिये ईश्वर तनिक भी ध्यान नहीं देते। जिसके परिणाम स्वरूप हमें पीछे पछताना पड़ता है जो कि बुद्धिशील मानव समाज को शोभा नहीं देता। हमें तो पूर्णरूप से विचार, धर्म और ज्ञान के आश्रय रह कर ही कार्य करना उचित है। इसी में हमारी शोभा और भलाई है।

———

तृतीय अध्याय

ऋतु धर्म और उसका स्वरूप

क्योंकि सन्तानोत्पति का सब से प्रथम साधन भूमि अर्थात् गर्भाशय की शुद्धि का वर्णन किया है। इसलिये अन्य बातों के बतलाने से पूर्व यह बतला देना अति आवश्यक समझता हूँ कि गर्भाशय की शुद्धि क्यों और किस प्रकार से की जाती है। आयुर्वेद मतानुसार गर्भाधान की शुद्धि रजोदर्शन से ही मानी गई है और रजोदर्शन उस अवस्था का नाम है जब कि एक मास से गर्भाशय में एकत्रित हुआ अति मलिन दुर्गन्धित और कुछ काला रक्त धमनियों द्वारा योनि के मुख द्वार से बाहर आकर गर्भाशय शुद्धि की सूचना देता है। इसे वैदिक शास्त्र में रजोदर्शन कहा गया है।

गर्भोत्पादक के लिये सुश्रुताकार ने स्त्री जाति में दो वस्तुओं को माना है

सुश्रुत संहिता अध्याय दूसरे में इस आर्तव के विषय में एक पाठ आया है कि पुरुषों में गर्भोत्पादक वीर्य नाम की एक ही वस्तु होती है। परन्तु स्त्री जाति में दो वस्तुओं का उल्लेख आया है एक दृश्य और दूसरी अदृश्य।

इनमें जो अदृश्य होती है वह अत्यन्त सूक्ष्म और शरीर के भीतर ही रहती है इसका अन्तः पुष्प या आर्तव कहते हैं और इसकी शुद्धि और अशुद्धि का ज्ञान होना कठिन है।

इसके अतिरिक्त दूसरी दृश्य होती है जो उपरोक्त कथनानुसार योनिद्वार से प्रतिमास बाहर आया करती है। इसको आर्तव, शोणित अथवा वर्हिपुष्प कहते हैं। इसी आर्तव शोणित के शुद्ध होने अथवा न होने से ही अन्तः पुष्प की शुद्धि या अशुद्धि का ज्ञान होना कहा गया है।

याद रहे कि जितनी भी वर्हिपुष्प की शुद्धि अधिक से अधिक और सावधानी से की जाती है उतनी ही अन्तः पुष्प की शुद्धि अधिक हुआ करती है जिससे अन्तः-

पुष्प रूपी बीज अच्छी सन्तान उत्पन्न करने योग्य हो जाता है।

लड़कियों में मासिक धर्म का आरम्भ

यह एक सृष्टि का नियम है कि जब कन्यायें अपनी बाल्यावस्था को लांघ कर यौवनावस्था की ओर आने लगती हैं तो स्वभावतः उनके शरीर में नाना प्रकार के परिवर्तन होते हुए उन्हें स्वयं ही अनुभव होने लगते हैं। जिनमें से ऋतुधर्म का आना भी एक विशेष और आवश्यक लक्षण है जिसके ऊपर लड़की के जीवन का कार्यक्रम और स्वास्थ्य का होना निर्भर है।

यह मासिक धर्म प्रायः लड़कियों को तेरह चौदह वर्ष से आरम्भ होकर धीरे २ शरीर के परिपक्व होते जाने के कारण पैंतालीस से पचास वर्ष की आयु तक समाप्त हो जाता है। अर्थात् स्वयं सूख जाता है इसे आर्तव निवृत का काल कहा गया है।

यह याद रखना चाहिये कि ऋतुधर्म का आरम्भ प्रायः लड़की के अपने आहार विहार पर निर्भर है। तथा उष्ण प्रधान देशों में रहने वाली लड़कियों को शीघ्र और

शीत प्रधान देशों में निवास करने वाली लड़कियों को कुछ देर से यह आरम्भ होता पाया गया है।

आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि जब लड़की को ऋतु-धर्म का आना आरम्भ होता है तो यह रजस्वला या ऋतु-धर्मा कहलाती है। इसका आना ही स्पष्ट रूप से बतला रहा है कि अब यह लड़की विवाह के योग्य होकर भावी सन्तान के लिये अपनी गर्भाशय रूपी भूमि को प्राकृतिक नियमानुसार प्रकृति के आश्रय शुद्ध कर रही है।

जैसा कि अभी अभी ऊपर बतलाया गया है कि ऋतुधर्म का आना एक प्राकृतिक नियम है इसलिये यह केवल गर्भाशय रूपी क्षेत्र को शुद्ध करने के लिये ही अपना यह रूप धारण नहीं करता प्रत्युत लड़की के स्वास्थ को अति उत्तम बनाता हुआ ईश्वर की सृष्टि को सुन्दर से सुन्दर और उत्तम बनाकर उसे बढ़ाने में भी पूर्ण सहायक होता है।

आर्तव निवृत्ति के कालिक चिन्ह

प्राकृतिक नियमानुसार रजोदर्शन के समय जैसे स्तन और गर्भाशय वृद्धि आदि के लक्षण प्रगट होते हैं। वैसे ही रजो निवृत्ति के समय भी गर्भधारण के प्रतिबन्ध

के लिये योग्य परिवर्तन हुआ करते हैं। यथा—

१—गर्भाशय, योनि तथा बीज ग्रन्थियाँ भी सिकुड़ने लगती हैं। इसी प्रकार आभ्यन्तरी परिवर्तनों के साथ साथ स्तनों का सिकुड़ना, आवाज का बदलना, शरीर का स्थूल या पतला होना, चेहरे की कोमलता का नष्ट होना इत्यादि बाह्य परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों से स्त्री की आभा में भी अन्तर आ जाता है जिसके फलस्वरूप पूर्व सा सौन्दर्य नहीं रहता।

इन शारीरिक परिवर्तनों के साथ साथ मानसिक परिवर्तन भी उत्पन्न होते रहते हैं जिससे प्रसन्न चित्त रहने वाली स्त्री कुछ क्रोधी, चिड़चिड़ी और बेचैन सी स्थिति की हो जाती है और अव्यवस्थित चित्त सी प्रतीत होने लगती है, स्मरण शक्ति भी निर्बल पड़ जाने से कभी २ पागलों की भांति बातें करने लगती है, इसी प्रकार शिर में चक्करों का आना, शरीर कम्प, निद्रानाश, शरीर में सुस्ती, स्तन उदर आदि में पीड़ा, दिल की धड़कन, पेट फूलना, मलावरोध, ऊर्द्धवात, अरुचि इत्यादि इसी प्रकार आयर्वेद ने और भी अनेक लक्षण वर्णन किये हैं। संक्षेप से रजो निवृत्ति स्त्री के लिये एक विकट समय होता है।

रजोदर्शन के शास्त्रीय लाभ

हे देवियो ! यह मासिक धर्म तुम्हारे स्वास्थ को उत्तम से उत्तम बनाये रखने के लिये ही प्रकृति माता ने तुम्हें सौंपा है जिसके द्वारा तुम सदा शुद्ध और पवित्र रह कर अपने को सुन्दर, शोभाशालिनी, बलवान, पति-प्रिय और निरोग रख कर अनमोल सन्तान रूपी रत्न का निर्माण कर सकती हो। इसी प्रकार आयुर्वेद के सुश्रुत संहिता नामक ग्रन्थ में स्त्री जाति में इस आर्तव के आने के पाँच और भी उत्तम लाभ बतलाये गये हैं जिनका नीचे उल्लेख किया जाता है :—

प्रथम लाभ—इसके आरम्भ से लड़की के यौवनावस्था के आरम्भ का और इसकी निवृत्ति से यौवनावस्था की निवृति का ज्ञान सहज में ही हो जाता है।

द्वितीय लाभ—प्रतिमास मासिक धर्म ठीक होने से साधारणतया स्त्री के गर्भाशय के दोष बह जाते हैं जिससे स्त्री का स्वास्थ ठीक बना रहता है।

तीसरा लाभ—जिसे रजो दर्शन प्रतिमास ठीक समय पर हो रहा है उसमें समय पर रजो दर्शन न होने से उसके स्वास्थ की खराबी का अनुमान किया जा सकता है।

चौथा लाभ—रजो दर्शन से पुत्र प्राप्ति की इच्छा हित समागम करने के काल का बोध हो जाता है।

पाँचवाँ लाभ—समागम करने के पश्चात् आर्तव दर्शन बन्द हो जाने से गर्भाधान होने का पूर्णतया ज्ञान हो जाता है। अतः साधारण जनता के लिये स्त्री की गर्भावस्था का ज्ञान होने का यही एक मुख्य लक्षण माना गया है।

रजस्वला का कर्तव्य

अतः प्रतिमास अपनी विवेक बुद्धि द्वारा इसकी रक्षा करना अर्थात् इसके आने के दिनों में प्राकृतिक नियमों द्वारा इसे हर प्रकार का सहयोग देना कि इसके आने में कोई बाधा न आने पावे यही तुम्हारा इन दिनों में धर्म और कर्तव्य होना चाहिये।

हमारे देश की बहुत सी भोली भाली नवयुवतियाँ प्रायः इस बात से अनभिज्ञ रहती हैं कि हमारे स्वास्थ और सौन्दर्य को उत्कृष्ट बनाने के लिये मासिक धर्म भी हमारे लिये कोई आवश्यक वस्तु है जिसके फल स्वरूप वह मासिक धर्म के दिनों में बहुत सारी असावधानियाँ कर बैठती हैं।

जैसे नित्य प्रति की भाँति घर के काम काज का करना, बोझा उठाना, शीतल वस्तुओं का प्रयोग अथवा शीतल जल से स्नान आदि का कर लेना। जिसका परिणाम आगे चल कर यह निकलता है कि रक्त अपने पूर्ण बल से बाहर न निकल कर अन्दर ही अन्दर नाना प्रकार की गाँठों के रूप में जम जाता है जो कि गर्भाशय में अनेक प्रकार के रोग पैदा कर युवती के स्वास्थ और सौन्दर्य को हर लेता है तथा साथ २ मानसिक चिन्ताओं का साधन बन जाता है।

इसलिये प्रत्येक युवती का केवल कर्तव्य ही नहीं प्रत्युत परम धर्म और कर्तव्य होना चाहिये कि वह प्रत्येक मास में आने वाले ऋतुधर्म का स्वरूप, उसके कारण, लक्षण, लाभालाभ और चिकित्सा का ज्ञान अपने स्वास्थ को ठीक रखने के लिये अवश्यमेव प्राप्त कर ले। जो बात धर्म की है, सुख और ज्ञान की है उसके जान लेने में दोष ही क्या है अर्थात् उसका जानना परमावश्यक है। इस लिये इस विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यर्थ की लज्जा करना अथवा दूसरे से पूछने में संकोच करना केवल भूल ही नहीं प्रत्युत महा भूल है।

आजकल प्रायः यह देखा जा रहा है कि रजस्वला

के दिनों में स्त्रियाँ अपने खान-पान पर कुछ भी ध्यान नहीं रखती। जो कुछ भी मन में आता है खा पी लेती हैं। विशेष करके ऐसे भोजन का प्रयोग कर लेती हैं जो बासी, गरम, खट्टे और कसैले होते हैं जो कि इन दिनों में उनके स्वास्थ के लिये शास्त्रों ने अधिक से अधिक हानिकारक कहे हैं और साथ २ में आगे आने वाली प्राण-प्रिय सन्तान के लिये भी रोगकारक बन जाते हैं तथा मन और इन्द्रियों के लिये भी दोष कारक सिद्ध होते पाये गए हैं। अतः ऐसे समय में उन्हें चाहिये कि वह ऐसे भोजनों का प्रयोग न कर केवल उन्हीं भोजनों का प्रयोग करें जो कि मधुर, रुचिकर, शीघ्र-पाचक, बल तथा शक्ति उत्पन्न करने वाले हों।*

जहाँ-जहाँ शास्त्रों ने वर्णन किया है कि स्त्री अपने स्वास्थ पर ध्यान दें वहाँ रजस्वला के दिनों पर विशेष

---

*इसका विशेष विवरण तथा पूरी २ जानकारी हमारी बनाई हुई 'स्त्री-रोग-प्रकाश' नामक पुस्तक के प्रथम अध्याय में विस्तारपूर्वक दी गई है जिसे प्रत्येक नवयुवती पढ़ कर पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त करती हुई अपने स्वास्थ को सुन्दर और निरोग रख तथा साथ २ मे अपनी अन्य बहिनों को भी लाभ पहुँचा सकती है।

रूप से बल दिया है जिसका विस्तार पूर्वक वर्णन आगे चल कर यथा स्थान पर दिया जायेगा।

स्त्रियों को यह बात भी सदा याद रखनी चाहिये कि जैसे खेत को अच्छा अथवा बुरा बनाना कृषिकार की अपनी बुद्धि और चतुराई पर निर्भर है इसी प्रकार उत्तम, दीर्घायु, बलवान और सुन्दर सन्तान का निर्माण करना भी स्त्री के लिये अपने गर्भाशय रूपी क्षेत्र की शुद्धि पर निर्भर है। इस लिये प्रत्येक स्त्री जाति का कर्तव्य है कि वह ऋतु धर्म के समय आगामी लिखे शास्त्रोक्त नियमों का पालन अवश्य करें। वास्तव में देखा जाय तो उत्तम सन्तान पैदा करने के लिये जिस प्रकार समय पर अपनी भूमि को उपजाऊ न बनाने वाला कृषक उत्तम से उत्तम उपज की आशा नहीं कर सकता उसी प्रकार जिन स्त्रियों ने प्राकृतिक नियमों द्वारा अपने गर्भाशय को शुद्ध कर गर्भधारण करने योग्य नहीं बनाया भला फिर वे भी उत्तम और स्वस्थ सन्तान की आशा कैसे रख सकती हैं।

देखिये यजुर्वेद अध्याय १९ के मंत्र ८७ में लिखा है कि स्त्री को चाहिये कि जिस गर्भाशय रूपी भूमि के बीच में गर्भधारण होता है अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के हित बीज बोया जाता है उसकी यथाशक्ति रक्षा करे अर्थात्

आयुर्वेद नियमानुसार ऋतु धर्म काल में उस गर्भाशय का हर प्रकार से ध्यान रक्खे ताकि उसमें किसी भी प्रकार का दोष उत्पन्न न होने पाय जो कि रजस्वला के लिये अति आवश्यक है। जो देवियाँ इस वेद मंत्र के कथनों पर ध्यान रखती हैं वे सदा सुखी निरोग आनन्दित रहती हुई उत्तम सन्तान को प्राप्त करती हैं।

प्रकृति ने स्त्री जाति को ऋतु धर्म में क्यों बाँधा है

अब यहाँ एक प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि प्रकृति देवी ने स्त्री जाति के साथ इस ऋतु धर्म का सम्बन्ध क्यों जोड़ा है और तिस पर भी धर्मशास्त्रों के कथनानुसार जब कि लड़की की सोलह वर्ष में शादी होनी है तो शादी होने से तीन वर्ष पूर्व से ही क्यों आरम्भ कर दिया है।

इस प्रश्न का उत्तर हमारे आयुर्वेद और धर्मशास्त्रों ने इस प्रकार से वर्णन किया है जिसे दृष्टान्त रूप से समझिये। आयुर्वेद में जहाँ धातु उपधातु इत्यादि का शोधन मारण विषय आया है वहाँ गन्धक की शुद्धि के विषय में भी दो श्लोक आये हैं।

अशुद्ध गन्धः कुरतेतुतापं कुष्टंभ्रम पित्तरुजां करोति।
रूपं वलं वीर्य मुखं निहन्ति तस्मात शुद्धो विनयोजनीया।१।

तथा

शुद्ध गन्धो हरेद्रोगान कुष्ट मृत्यु जरादिकान।
अग्नि कारी महानूष्णो वीर्य वृद्धि करोति च।२।

जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि जो गन्धक अशुद्ध है अर्थात् जिसे आयुर्वेद विधि अनुसार पूर्ण रूप से शुद्ध नहीं किया गया वह अपने दोषों के स्वभाव से प्रयोग करने वाले मनुष्य में नाना प्रकार के, ताप, कोढ़ भ्रम (शिर में चक्करों का आना) तथा विकृत पित्त को उत्पन्न करना इत्यादि रोग उत्पन्न करती हुई साथ २ में मनुष्य के रूप, बल, वीर्य और सुन्दर से सुन्दर चेहरे की लावण्यता को भी मिटिया मेट कर देती है अतः इसे शुद्ध कर लेना अति आवश्यक है।

परन्तु यदि वही गन्धक अपनी शोधन विधि की क्रिया द्वारा शुद्ध कर ली जाती है तो वह मनुष्य को हानि पहुँचाने वाले दोषयुक्त स्वभाव का त्याग कर निम्नलिखित गुणों से परिपूर्ण हो विधिवत प्रयोग करने वाले मनुष्य को सुन्दर शोभा शाली तथा तेज ओज से परिपूर्ण कर देती है तथा साथ २ अग्नि प्रदीपक होने से वीर्य और

बल को बढ़ाती हुई कुष्ट मृत्यु बुढ़ापे पर विजय प्राप्त कराने वाली बन जाती है।

इसी भाँति यदि विधि और ध्यानपूर्वक जिस गर्भाशय की शुद्धि नहीं की जाती उस गर्भाशय का विकृत रक्त भी शरीर में नाना प्रकार के शारीरिक या मानसिक रोगों का कारण बन जाता है। और इसके शुद्ध होने से आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार यह रज स्त्री जातिमें, तेज, कान्ति, सौन्दर्य, लावण्यता, प्रीति और उत्तम से उत्तम सन्तान का दाता बन जाता है। इसीलिये प्रकृति देवी ने प्रतिमास इसको शुद्ध करने का नियम बाँधा है।

अथवा जैसे खेत को उपजाऊ बनाने के लिये कृषि-कार उसमें पड़े पत्थर और कूढ़े कर्कट आदि को जो कि उत्तम खेती के लिये बाधक हैं उन्हें निकाल कर खेत को शुद्ध करना आवश्यक समझता है। इसी प्रकार जब भी प्रति मास स्त्री की योनि नवीनावस्था को प्राप्त होती है अर्थात दूषित रज रोग से रहित हो शुद्ध एवं पवित्र नवीन रज बीज को ग्रहण करती है तो उसी समय को आयुर्वेद ने ऋतुकाल की संज्ञा दी है अर्थात् गर्भाधान करने का यथोचित समय बतलाया है।

साधारणतया आर्तव की प्रवृत्ति के दिनों की गणना

प्रति चाद्र मास की तिथि गणना के अनुसार २८ दिन के बाद हुआ करती है।

जिससे कि गर्भाशय रूपी भूमि सदा पवित्र, निरोग, स्वस्थ और उपजाऊ बनी रहे। ताकि उसमें वीर्य रूप अनमोल वीज पड़ने पर फल लाने के निमित्त किसी प्रकार की वाधा न आने पाये। इसलिये इसे शुद्ध और निरोग रखने के लिये वेद में भी यथा-यथा स्थानों पर शिक्षा-प्रद कई पाठ आये हैं।

कौन कन्या उत्तम पुष्पवती होकर फूलती और फलती है

जिस कन्या का गर्भाशय सोलह वर्ष में शादी होने से पूर्व कम से कम छत्तीस मास में छत्तीस वार अर्थात् तीन वर्ष तक लगातार मासिक धर्म की शुद्धि से शुद्ध हो जाता है वही कन्या समय आने पर उत्तम पुष्पवती हो कर फूलती फलती है। आयुर्वेद का प्रधान ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में लिखा है कि कन्या को जब पहिले पहिल ऋतुदर्शन होता है तब वह ऋतु युक्त तो होती है परन्तु उसे ऋतुमती नहीं मानना चाहिये अर्थात् वह उस समय पुष्पवती कहलाने योग्य नहीं, कारण कि इस १२-१३ वर्ष

की अवस्था में उसका शरीर तथा उसका रजरूपी बीज अपरिपूर्ण और अपरिपक्वावस्था में होते हैं जिससे वह गर्भ धारण करने योग्य नहीं होती। इसके विषय में आयुर्वेद और धर्म शास्त्रों का कथन है कि—

तस्मात् अत्यन्त बालायाम् गर्भाधानं न कारयेत्।

ज्यों ज्यों लड़की में इस ऋतु आगमन की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसकी कली खिलने लगती है और धीरे धीरे उसमें स्त्रीत्व आने लगता है। और ज्यों ज्यों स्त्रित्व बढ़ता जाता है त्यों त्यों चेहरा पुष्ट, प्रसन्न और लज्जायुक्त होता जाता है। स्तन तथा गर्भाशय आदि में वृद्धि होने लगती है।

शरीर की इस वृद्धि के साथ साथ उसके मन में भी पर्याप्त परिवर्तन हो जाता है, पुरुष प्राप्ति की इच्छा उसके मन में जागृत हो जाती है। भौतिक वार्तालाप के करने में उसकी रुचि बढ़ जाती है यह सब कुछ बीज कोष के अन्तसार से होता है। यह द्रव्य रक्त के द्वारा स्त्री के समस्त शरीर में जादू की तरह फैल कर उसको पूर्ण स्त्री तथा गर्भ धारण का भार ग्रहण करने के योग्य बना देता है। जब उस लड़की की शादी हो चुकती है तो यह सब

उपरोक्त लक्षण और भी अधिक जोर (बल) पकड़ जाते हैं।

विवाह से तीन अथवा चार वर्ष पूर्व ऋतु आने में शास्त्रीय प्रमाण

क्योंकि प्राकृतिक नियमानुसार आठ वर्ष के उपरान्त नारी जाति के गर्भाशय में एक प्रकार की उष्णता बढ़नी आरम्भ हो जाती है और धीरे धीरे इतनी बढ़ जाती है कि पुरुष के वीर्य को गर्भाशय में स्थित नहीं होने देती। इसलिये जो गर्भाशय में आठ वर्ष के उपरान्त चार पाँच वर्षों से संचित अत्यधिक उष्णता का वास है उसे समता रूप में लाने के लिये कम से कम छत्तीस बार मासिक धर्म द्वारा प्रकृति ने धीरे धीरे उसे बाहर निकाल कर गर्भाशय को गर्भ धारण करने योग्य बनाना है। इसीलिये प्रकृति ने विवाह हो जाने से तीन वर्ष पूर्व ही कन्यापन से ही मासिक धर्म का ऐसा नियम रच रक्खा है।

इस प्रकार जब कन्या को ऐसी उत्तम अवस्था का अर्थात गर्भाधान करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है तब उस कन्या को वेदादि शास्त्रों ने पुष्पवती नाम से पुकारा है अर्थात उत्तम फलदायिनी कहा है और उसे अपने योग्य

सुन्दर वर से वरने की आज्ञा दी गई है। इस दशा में उसे सुन्दर आहार विहार ही योनि सम्बन्धी रोगों से मुक्त रख सकता है। इस विषय की पुष्टि के लिये मनुस्मृति में भी मनु महाराज ने अध्याय नवम श्लोक ९० में लिखा है कि—

त्रीणि वर्षाण्यु दीक्षेत कुमार्यार्तुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥

जिसका भावार्थ यह है कि कन्या जब तीन वर्ष पर्यन्त लगातार प्रतिमास नियम पूर्वक रजो दर्शन होती हुई अर्थात् अपने गर्भाशय को ३६ बार पूर्ण रूप से अति शुद्ध बना कर गर्भ धारण करने योग्य बना ले तत्पश्चात वह विवाह करने योग्य होती है अर्थात् उसे विवाह करने का अधिकार है।

इस नियम के आधार पर हमारे धर्म शास्त्रों ने कन्या के विवाह का नियम सोलह वर्ष के उपरान्त कहा है। इस प्रकार जो कन्या अपने को प्राकृतिक नियमानुकूल तीन वर्ष तक पवित्र कर ले तब उसे अपने लिये अपने योग्य पति की खोज करने का आयुर्वेद और धर्म शास्त्रों ने पूर्ण अधिकार दिया है।

ऋतुधर्मा की दिनचर्या

सृष्टि नियमानुसार मासिक धर्म के दिनों में रजस्वला स्त्री की शारीरिक और मानसिक दोनों अवस्थाओं में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन सा आ जाता है। अतः उस समय रजस्वला के लिये एक आवश्यक कार्य हो जाता है कि वह अपने स्वास्थ को सुचारु रूप से बनाए रखने के लिये उस अवधि तक आयुर्वेदोक्त नियमों का पालन करना अपना धर्म और कर्तव्य समझे अथवा जब तक कि रक्त का निकास जारी रहे।

याद रहे कि मासिक धर्म के दिनों में यदि किंचित् भी प्राकृतिक नियमों का उलंघन हुआ या किसी भी प्रकार की भूल हुई तो निश्चय ही गर्भ धारण होना तो दूर रहा सारे का सारा जीवन दुःखप्रद बन जायेगा।

देखो हमारे हिन्दू धर्म के धर्म शास्त्रों तथा स्वस्थ मार्ग के पवित्र पथ प्रदर्शकों ने स्त्री को सुखी, आनन्दित और तेजरूपा बने रहने के अनेक सुन्दर सुन्दर तथा मनोहर उपदेश दिये हैं जिनको कि सर्व सम्प्रदायों की मानव जातियाँ मान रही हैं कि स्त्री रजस्वला के दिनों में हर प्रकार से अशुद्ध है। अतः उसे चाहिये कि वह इन चार

दिनों में भूल करके भी कोई ऐसा कार्य न करे जिससे स्वास्थ में किसी प्रकार की बाधा पड़े अथवा धर्म की हानि हो।

आजकल प्रायः यह देखने में आ रहा है कि हमारे देश की स्त्री जाति नाना प्रकार के रोगों का घर बनी हुई है। आयुर्वेद बतलाता है कि इसका प्रधान कारण ऋतु-धर्म के दिनों में नाना प्रकार की असावधानियाँ कर बैठना है।

अतः हे देवियां !

जो बीता सो तो गया, बाकी बचा संभाल।
सुख पाओगी जगत में, जीवन रहे निहाल॥

इसी प्रकार कोका पंडित का भी कहना है कि—

ऋतुवन्ति को चाहिये, सावधान रहे नित्त।
कोक कहे रति पुरुष संग, हठ करे नहिं चित्त॥
तीन दिनन तक बच रहे, जाय न पति के पास।
कोक कहे यह रज समय, राखो चित्त हुलास॥
इस कारण इस सीख पर, धरो सदा तुम ध्यान।
रक्षा होवे धर्म की, देही का कल्याण॥

शास्त्र कहता है कि जिस दिन से स्त्री रजस्वला हो उस दिन से लेकर छः दिनों तक अथवा जब तक रजो-

धर्म बन्द न हो जाय तब तक अपने आहार विहार का नियम ठीक रखते हुये ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अवश्य रक्खे तथा यत्न पूर्वक अधोलिखित दस नियमों के पालन पर भी कटिबद्ध रहे।

लेखक सुश्रुत ने लिखा, ज्ञान भरा इक लेख।
जो चाहो अपना भला, उसे लीजिये देख॥
सच्चे हृदय प्रेम से, रहा हमें समझाय।
जो सुख सुन्दर स्वास्थ में, और कही नहीं पाय॥
इस कारण जो कुछ कहूँ, उसे लीजिये मान।
आयु बल आरोग्यता, मिले आपको दान॥
रहें उपद्रव शान्त सब, मन माने बहु मोद।
खेले सुन्दर सन्तति, आकर तेरी गोद॥
जिसका सुन्दर रूप हो, सुन्दर होवें केश।
सुन्दर भाव विचार में, लागी रहे विशेष॥

रजस्वला के लिये आवश्यक आदेश

(१) ब्रह्मचर्य पालन—आयुर्वेद शास्त्र में रजस्वला के स्वास्थ रक्षा हित उनके पालन करने के लिये जितने भी नियम या साधन बतलाये हैं उन सबमें सबसे आवश्यक पहिला नियम ब्रह्मचर्य पालन का वर्णन किया है

जो कि सब नियमों में प्रधान और श्रेष्ठ नियम है।' अतः रजोदर्शन के दिनों में इस व्रत का पालन केवल स्त्री के लिये नहीं प्रत्युत स्त्री और पुरुष दोनों के लिये अति आवश्यक है। जहाँ इन दिनों में स्त्री के लिये आवश्यक है कि वह अपने पति से पृथक रहे इसी प्रकार पुरुष को भी उचित है कि वह भी स्त्री के रजोधर्म के काल में किसी प्रकार के भी काम वासना के भाव अपने मन में जागृत न होने दे क्योंकि इस समय रजस्वला की जननेन्द्रिय मलिन और अति घृणित रक्त से परिपूर्ण होती है अतः ऐसे समय में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अति आवश्यक है।

(२) शीतल पदार्थों का त्याग—रजोधर्मा स्त्री को चाहिये कि वह रजोदर्शन के दिनों में हर प्रकार के शीतल पदार्थों के खान-पान और व्यवहार से भी अपने शरीर की रक्षा करती रहे। इसमें स्नान का तो सर्वथा परित्याग रक्खे। और बर्फ का पानी पीना तो इन दिनों में अत्यन्त हानिकारक कहा गया है। याद रहे कि जो स्त्रियाँ किसी भी कारण से रज को रोकने का यत्न करती हैं उनका गर्भाशय सूज जाता है जिससे अन्त में अत्यधिक कष्ट का सामना करना पड़ता है।

शरीर के किसी अंग को विशेष करके रक्त प्रवृति मार्ग (योनि) को तो किसी भी प्रकार से शीतलता नहीं पहुँचनी चाहिये। क्योंकि यह शीतलता ऋतुधर्मा नारी के लिये विष के समान है कारण कि इससे दूषित रक्त रुक कर नाना प्रकार के योनि सम्बन्धी रोग जैसे सूजन, कंडू, खुजली आदि रोगों को उत्पन्न करने में सहायक हो जाता है।

प्रायः पांचाल देश की देवियाँ ऋतुधर्म के प्रथम दिन से ही शुद्ध होने के निमित्त स्नान कर घर के काम काज में लग जाती हैं। परन्तु इस स्नान से शुद्धि तो क्या होती है प्रत्युत वह घोर गर्भाशय और प्रदरादि रोगों से आक्रान्त हो जाती हैं जो कि उनकी महाभूल और नादानी का चिन्ह है। परन्तु शास्त्र तो यही कहता है कि इन दिनों में ऋतुमती स्त्री को कोई भी छोटे से छोटा शारीरिक और मानसिक श्रम भी नहीं करना चाहिये जिससे कि इन दिनों में किसी भी प्रकार की थकावट प्रतीत हो।

(३) विश्राम—जहाँ तक हो सके ऋतुवाली को अधिक से अधिक विश्राम करना अनुभवी वैद्यों ने अति आवश्यक और लाभदायक बतलाया है यहाँ तक कि

किसी भी ऐसी वस्तु को न उठाये जिसके उठाने में परिश्रम अधिक करना पड़े या थकान प्रतीत हो।

आयुर्वेद तो यहाँ तक बतलाता है कि ऋतुधर्मा को किसी प्रकार का घर का काम भी नहीं करना चाहिये इससे धर्म और स्वास्थ दोनों ही बने रहते हैं। क्योंकि एक तो वह इन दिनों में अपवित्र होती है और दूसरा रक्त प्रवाह रहने के कारण शरीर में निर्बलता विशेष रूप से आई हुई होती है।

इन दिनों की शारीरिक निर्बलता के कारण साथ २ में मन और बुद्धि भी ठीक रूप से अपना २ कार्य नहीं कर पाती अतः इन दिनों में पढ़ना, पढ़ाना आदि भी आयुर्वेद शास्त्र ने अनुचित वर्णन किया है।

देखो जब किसी मनुष्य को डाक्टर या वैद्य रेचक या दस्तावर औषधि देता है तो उसे इधर-उधर के कार्यों के करने से रोक कर पूर्ण विश्राम करने का आदेश देता है। इसका प्रधान कारण यह है कि प्रकृति उस समय मनुष्य के शरीर में से विकृत मल निकालने में अपना कार्य कर रही होती है।

यदि उस समय प्रकृति और मनोवृत्ति को किसी अन्य ओर लगा दिया जायेगा तो स्वाभाविक ही मल के

शरीर के किसी भाग में रुक जाने का भय उपस्थित हो जायेगा जिससे फिर वह मल रुके हुए स्थान को दूषित अथवा रोगी बना देगा कारण कि वह औषध जिस प्रकार शरीर को लग कर शरीर को स्वस्थ बनाना चाहती है वैसा न बना सकेगी।

इसी आधार पर आयुर्वेद के प्रसिद्ध चिकित्सक धन्वन्तरि जी भी लिखते हैं कि इन चार दिनों में रजस्वला स्त्री को उचित है कि वह किसी भी अंग में किसी भी प्रकार का शृङ्गार धारण न करे और न किसी प्रकार किसी से लड़ाई झगड़ा आदि ही करे।

क्योंकि इन दिनों में जिस भी अंग में शृंगार किया जाता है उस समय उस दूषित रक्त की गति स्वाभाविक ही उस अंग की ओर विशेष रूप से गति करने लग जाती है। ऐसा प्रकृति का नियम है जिससे कि वह फिर पूर्ण रूप से बाहर न निकल कर उस अंग में विकार पैदा कर देता है।

लड़ने और झगड़ने से भी रक्त की बाह्य गति में रुकावट आकर बहुत काल तक असह्य सिर पीड़ा का रोग खड़ा हो जाता है।

इसलिये बुद्धिशील नारियों को उचित है कि

उपरोक्त कथित किसी भी बात को न करके पूर्ण विश्राम द्वारा ही दूषित रक्त को निकालने में यथाशक्ति सहायता दें। और अपने मन में यह धारणा करलें कि हमारे कल्याण के लिये प्रकृतिरूपी चिकित्सिका ने हमें इसका जुलाब दे रक्खा है। इसलिये उसके आदेश पर चलना हमारा कर्तव्य है। केवल इतना ही नहीं प्रत्युत इन दिनों में किसी प्रकार की भी दौड़ धूप अथवा तेज से चलने आदि को भी सर्वथा त्याग देना चाहिये। कारण कि इन दिनों में गर्भाशय में एक प्रकार की उथल पुथल होने से गर्भाशय के विकृत अर्थात् (टेढ़ा मेढ़ा) हो जाने का भय रहता है।

(४) आहार—इन दिनों में रजस्वला को चाहिये कि वह जो कुछ भी भोजन करे उसके साथ में इस बात का ध्यान भी अवश्य रक्खे कि वह भोजन न तो अति उष्ण हो और न अति शीतल जिससे शरीर में वायु कुपित हो जाने का भय हो, प्रत्युत ऐसा आहार प्रयोग करे जो कि सात्विक पुष्टिकारक, लघु तथा शीघ्र पचने वाला हो।

ऐसे भोजनों का प्रयोग भी त्याग देना चाहिये जो कि नाना प्रकार की खटाइयों से निर्माण किया गया हो

तथा तीक्ष्ण और तैल से बने पदार्थों का भोजन भी सख्त निषेध है। रजस्वला स्त्री के लिये ऐसे भोजनों का आयुर्वेद विशेष रूप से विरोध करता हुआ आदेश देता है कि जो बिचारवान देवियाँ रजस्वला के दिनों में ऐसे भोजनों से सदा दूर रहती हैं वह सुखपूर्वक ऋतुधर्म से शुद्ध हो उत्तम सन्तान पैदा करने की अधिकारिणी होती हैं। इसी प्रकार—

हे जग भर की देवियो, ऋतु धर्म के काल।
तीन वस्तु से बच रहो, जीवन चहो निहाल॥
दूध, दधि अरु छाछ से, बने जो नाना भोग।
रज को ये दूषित करें, गर्भाशय में रोग॥
ऋतुधर्म के दिनन में, जो वृद्धवन्ता नार।
भोजन करे विचार कर, वही सुखी संसार॥
स्वास्थ शास्त्र सब दे रहे, तुम्हें यही सन्देश।
बल पौरुष सुख जो चहो, मान शास्त्र आदेश॥

(५) भोजन—आयुर्वेद शास्त्र बतलाता है कि रजस्वला को उचित है कि वह जब भी भोजन किया करे किसी धातु के बर्तनों का प्रयोग न कर केवल वृक्षों के पत्तों से निर्मित पत्तल अथवा मिट्टी के पात्र में ही करे। क्योंकि ऐसा करना उनकी स्वास्थ की वृद्धि में जहाँ सहा-

यक हो जाता है वहाँ पर साथ साथ में ऐसा करना धर्म शास्त्रों ने धर्म भी कहा है।

हमारे मानव धर्मशास्त्रों के अनुसार जैसे रजस्वला स्त्री सहवास के लिये अयोग्य मानी गई है। वैसे ही गृह कार्यों के करने के लिये भी उसे मना किया गया है। क्योंकि वह उस समय अपवित्र और मलिन होती है। इसलिये हमारे भारतीय ऋषियों ने रजस्वला स्त्रियों को सब प्रकार के गृह कार्यों से दूर ही रहने का नियम बांधा है।

रजस्वला को केवल भारतीय धर्म शास्त्रों ने ही अशुद्ध नहीं माना प्रत्युत ईश्वरीय न्याय नियम के अनुसार पाश्चात्य देशों ने भी इसे अपवित्र माना है क्योंकि पाश्चात्य देशों में भी इस भारतीय पवित्र प्रथा का पुरातन काल में पर्याप्त आदर सत्कार था। इसलिये रजस्वला स्त्री को इन चार दिनों में पृथक रहना अत्यन्त सुखदायक और लाभप्रद है।

कुछ महानुभावों के मुखारविन्द से सुनने तथा पुस्तकों के अध्ययन से ऐसा भी पता चला है कि मासिक धर्म के दिनों में ऋतुधर्मा स्त्री के हाथ में रक्त द्वारा एक ऐसा दोष आ जाता है जो कि उसके हाथ से बनाई हुई रोटी

आग में सेंकने से फूलती नहीं। इसी प्रकार ऋतुकाल के दिनों में यदि अचार आदि वस्तुओं को छू लें अर्थात स्पर्श कर दे तो वह भी सड़ जाता है। इन दोनों बातों को आप महानुभाव स्वयं परीक्षा करके देख सकते हैं।

देखिये सुश्रुत संहिता के दूसरे अध्याय में एक पाठ आया है कि यदि रजस्वला के दिनों में रजस्वला स्त्री के हथेली पर एक ताजा फूल रख दिया जाये और दूसरा उसी तरह का फूल रजो निवृत्ति की हथेली पर तो कुछ देर में आप देखेंगे कि रजो निवृत्ति स्त्री के हाथ पर रखे फूल की अपेक्षा रजोधर्मयुक्त स्त्री के हाथ वाला फूल शीघ्र मुरझा जायगा।

कुछ पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने हमारे आयुर्वेद ग्रन्थों के अध्ययन करने पर उपरोक्त बातों का वास्तविक तथ्य जानने के लिये अपने विज्ञान द्वारा कुछ अन्वेषण किया और अन्त में वह लोग इस परिणाम पर पहुँचे कि रज-स्वला स्त्री के रक्त में एक प्रकार का रजो विष होता है जो कि स्वेद और उसके दूध आदि द्वारा उत्सर्गित होता रहता है।

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ कि रजस्वला स्त्री को धर्म

और स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से गृह कार्यों से निवृत्त रखने के लिये प्राचीन तत्व में कुछ तथ्य अवश्य है।

परन्तु आजकल दूसरों की देखा देखी इस पवित्र और धर्म-रक्षक रिवाज को तोड़ने की जो बुरी प्रवृत्ति चल रही है वह प्रशंसनीय नहीं है। देश और जाति के लिये हानिप्रद है। याद रहे कि जो स्त्रियाँ रजोदर्शन के दिनों में अपने बच्चों को अपना दूध पिलाती हैं उनके बच्चे जीवन भर रोगी और निर्बल बने रहते हैं फिर उन्हें बाहर की कोई भी पौष्टिक औषधि या उपचार सबल नहीं बना सकते। ऐसा अनुभवी वैद्य समाज का अनुभव हमें स्पष्ट रूप से बतला रहा है। इसलिये इस विषय पर हमारी माताओं को अवश्य ध्यान देना श्रेयस्कर है।

(६) शयन—रजस्वला को चाहिये कि वह रक्त प्रवृति के दिनों में दिन का सोना सर्वथा परित्याग कर दे क्योंकि दिन के समय सोने से उसके स्वास्थ्य की हानि होती है। यदि विश्राम करने के लिये किसी समय लेटना भी हो तो ऐसे स्थान पर न लेटे जो अति कठोर, शीतल अथवा भय आदि से युक्त हो प्रत्युत ऋतु को देख कर कम्बल पर चटाई आदि बिछा कर ही विश्राम करे।

(७) शुद्धि—शास्त्र कहता है कि ऋतुधर्मा को उचित है कि जहाँ तक हो सके अपने को अन्दर और बाहर की मलीनता से बचाती रहे अर्थात् अपने पहिने हुए कपड़ों को हर प्रकार से साफ रक्खे जिससे कि चित्त की प्रसन्नता तथा आभ्यन्तर विचारों के पवित्र रहने में पूर्ण रूप से सहायता मिल सके।

(८) प्रसन्नता—ऋतुवन्ता के लिये अति आवश्यक है कि वह मासिक धर्म के दिनों में सदा ऐसे वातावरण में रहे कि जहाँ उसका चित्त प्रसन्न रह सके जिससे कि किसी भी प्रकार के भय, चिन्ता, हर्ष, क्रोध तथा वैर आदि के भाव मन में जागृत न हो सकें।

(९) गन्दे विचारों का त्याग—शास्त्र तथा अनुभवी महानुभावों का कहना है कि रजस्वला स्त्री का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह इन दिनों में पर पुरुषों से वार्तालाप सर्वथा त्याग दे तथा गन्दे मलिन विचार रखने वाली स्त्रियों से भी दूर रहे क्योंकि हो सकता है कि आजकल के गन्दे वातावरण के कारण उसके प्रबल गन्दे विचार तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर तुम्हें भी गन्दा बना दें।

(१०) स्नान—ऋतुधर्मा स्त्रियाँ को चाहिये कि जहाँ उनके लिये आयुर्वेद शास्त्र प्रथम के चार दिनों में

अथवा जब तक रक्त का प्रवाह जारी रहे स्नान करना निषेध करता है, वहाँ पर रक्त के बन्द होने के पश्चात् शरीर तथा मन की शुद्धि के लिये कुछ गुनगुने जल द्वारा अच्छे प्रकार से स्नान करने का आदेश भी देता है। इस-लिये उस समय स्त्री का कर्तव्य है कि वह अपने प्रत्येक अंगोंपांगों को पूर्णरूप से शुद्ध कर भली प्रकार से स्नान करे तथा उत्तम वस्त्रों को धारण कर कुछ समय के लिये एकान्त में बैठ अपने मन ही मन में भगवद् गुण गान द्वारा अपने मन को पवित्र कर सबसे प्रथम अपने पतिदेव का दर्शन करे ऐसा धर्म शास्त्रों का मानव जाति के कल्याण तथा उत्तम सन्तानहित अति मनोहर और सुन्दर आदेश है।

अतः स्त्री को चाहिये कि उपरोक्त कथित अति उत्तम आयुर्वेदोक्त वचनों और नियमो का पालन अवश्य करे और उन्हें कभी विस्मृत न होने दे तभी वह अपनी पवित्र मनोकामना को सफल रूप में देख सकेगी।

शुद्ध गर्भाशय में किया, जाता जब संभोग।
सन्तति सुन्दर स्वस्थ का, बन जाता है योग।
यह निश्चय यह सत्य है, यही शास्त्र का ज्ञान।
इस हेतु शुद्ध गर्भ में, करो वीर्य का दान।

वैदिक मतानुसार रजस्वला की असावधानियों का परिणाम

१—जो स्त्री रजोदर्शन के दिनों में अज्ञानता, प्रमाद या काम के वशीभूत हो ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न कर के विषयासक्त रहती है, आयुर्वेद शास्त्र स्पष्ट रूप से कहता है, कि इन दिनों में किया संभोग जहाँ उनके लिये महा-भयंकर रोगोत्पादक बन जाता है वहाँ पर साथ में उन्हें भी गर्भस्थिति की भी कोई आशा न रखनी चाहिये क्योंकि उस समय रक्त का प्रवाह बाहर की ओर गमन कर रहा होता है और यदि किसी कारण से अन्तिम चौथे दिन गर्भ ठहर भी जाय तो उस काल में ऋतुवन्ती कामांध जो २ निषिद्धाचरण करती है ठीक वही के वही दोष गर्भगत बालक में भी अवश्यमेव आ जाते हैं।

२—शीतल वस्तुओं का प्रयोग जैसे कि पूर्व भी एक स्थल पर कहा जा चुका है कि रजोदर्शन का बाहर निकालने वाला प्रवाह रुक कर योनि के अन्दर नाना प्रकार की ग्रन्थियां अर्थात् गांठ उत्पन्न कर अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देता है।

३—अधिक शारीरिक परिश्रम करने अथवा दौड़

धूप लगाने से गर्भाशय विकृति को प्राप्त हो जाता है अर्थात् वह टेढ़ा हो जाता है जिसका परिणाम यह निकलता है कि प्रथम तो गर्भस्थिति ही नहीं होती। यदि किसी कारण वश हो भी जाय तो सदा रोगी रहने वाली तथा टेढ़े अंगों वाली सन्तान होगी तथा प्रसूत के समय माता को भी अधिक कष्ट का सामना करना पड़ता है। इसलिये रजस्वला को इन चार दिनों में पूर्ण विश्राम करने का आदेश दिया गया है।

४—खट्टे, तीखे, तैल आदि से बने पदार्थ अथवा नाना प्रकार के मरिच मसालों के सेवन से रक्त दूषित सन्तान पैदा होती है ऐसा अनुभवी पुरातन महानुभावों तथा वैद्य समाज का निश्चय मत है।

५—दिन में अधिक सोने से निद्रालु, आलसी तथा नेत्र रोगी विकृत दृष्टि सन्तान घर में आती है और साथ में गर्भ गिरने का भी भय रहता है।

६—जो स्त्रियाँ इन चार दिनों में ज्यादा चिन्तातुर रहती हैं अथवा दूसरों से ईर्षा द्वेष का भाव रखती हैं, यदि उसी मास में उन्हें गर्भ रह जाय तो उनकी जो भी सन्तान उत्पन्न होगी वह भी सदा जीवन पर्यन्त किसी न

किसी बात से चिन्तातुर रहने वाली तथा दूसरे से ईर्षा करने वाली ही निश्चय रूप से उत्पन्न होगी।

७—ध्यान रहे कि जो स्त्री रजस्वला के दिनों में जल्दी जल्दी चलती है अथवा दौड़ती है उसका बच्चा भी चंचल विचार, चंचल बोलचाल, स्वभाव और चंचल ही चाल का चलने वाला पैदा होता है तथा इन दिनों में सवारी करने से भी स्त्री स्वयं गर्भाशय के विकारों से पीड़ित रहती है। इसलिये कहा भी है कि जिस मास के रजस्वला के दिनों में स्त्री का स्वभाव चंचल रहता है यदि उस मास में गर्भ स्थिति हो जाय तो जन्म लेने वाला बालक निश्चय रूप से निम्नलिखित चंचल स्वभाव से परिपूर्ण होगा :—

चंचल मन की वृत्तियाँ, चंचल सकल विचार।
बोलचाल चंचल रहे, उसका इस संसार॥

८—जो ऋतुधर्मा रजोदर्शन के दिनों में स्वभाववश सुरा पान करती हैं। आयुर्वेद कहता है कि प्रथम तो उन की सन्तान होती ही नहीं अगर हो भी जाय तो उन्मादी पागल निर्बल और अल्पायु होती है।

९—जो स्त्रियाँ रजोदर्शन के चार दिनों में क्रोध के स्वभाव में रहती हैं या छोटी छोटी बात पर हठधर्मी रहती

हैं याद रहे कि उनका बालक भी क्रोधी और महा हठी ही निश्चय रूप से पैदा होता है ऐसा कई अनुभवी स्पष्ट वक्ता सज्जनों से पता लगा है।

१०—इन चारों दिनों में जो रजस्वला मलिन रहती है याद रहे कि उनकी सन्तान को भी अपने जीवन में मलिनता से विशेष प्रेम रहता है। उन्हें सफाई से कोई प्रयोजन नहीं रहता जैसा कि ग्रामीण और अल्प बुद्धि रखने वाली जनता में देखने में आया है।

११—सुश्रुताचार्य जी का कहना है जो स्त्रियाँ ऋतु-धर्म के दिनों में नेत्रों में अंजन का प्रयोग करती हैं यदि उन्हें इस मास में गर्भ धारण हो जाय तो वह निश्चय ही नेत्रों के होते हुए भी नेत्र ज्योति से हीन सन्तान को जन्म देती हैं। इसी प्रकार चरक ऋषि जी का भी कहना है कि—

> ऋतुधर्म के दिनन में, अंजन करे जो नार।
> सूरदास सन्तति जने, चरक ग्रन्थ अनुसार॥

१२—रोने से दरिद्री, निर्बल, हठी, विकृत दृष्टि नाना प्रकार के नेत्र विकारों से युक्त तथा धन नाशक सन्तान का घर में जन्म होता है।

१३—स्नान करने से चर्म रोगी तथा आजीवन दुखी रहने वाले तथा चिड़चिड़े स्वभाव के बालक का जन्म होता है।

१४—नख काटने से बुरे तथा टेढ़े नखों वाली सन्तान का निश्चय घर में जन्म होता है।

१५—अधिक हंसने से काले होंठ तथा ऊँचे नीचे दाँतों वाला बालक पैदा होता है।

१६—अधिक बोलने तथा चिल्लाने से निश्चय ही बकवादी और बिना बुलाये स्वयं कुछ न कुछ बोलते रहने वाले जीव का जन्म होता है।

१७—जो शृङ्गार प्रिय स्त्री इन चार दिनों में भी शृङ्गार करना नहीं छोड़ती आयुर्वेद कहता है कि उसके घर नाना प्रकार की काम वासनाओं से परिपूर्ण सन्तान पैदा होती है।

१८—जो रजस्वला इन चार दिनों में देह पर तैल की मालिश करती है या उबटन आदि लगाने में मस्त रहती है याद रहे कि उनके घर में कुष्ठी और चर्म रोगी सन्तान बिना रोक टोक के आती है।

१९—जो रजस्वला रजस्वला के दिनों में गन्दे गन्दे उपन्यास या अन्य जीवन को भ्रष्ट विचार देने वाली

पुस्तकों के पढ़ने में रुचि रखती हैं अथवा गन्दे गन्दे गानों को गाती हैं याद रहे कि ऐसे विचार उनको गन्दा बना कर आने वाली सन्तान में निर्लज्जता पैदा कर देते हैं।

२०—आयुर्वेद स्पष्ट रूप से हमें बतला रहा है कि जो रजस्वला इन दिनों में किसी भी प्रकार की हिंसा में भाग लेती है, या मांस खाती है तो उसके घर में हिंसक, नाना प्रकार के पाप कर्म में प्रवृत्त रहने वाली तथा निर्दयी सन्तान पैदा होती है।

२१—असत्य बोलने से पाखंडी तथा अधिक बोलने से गूंगा बालक पैदा होता है। शास्त्र कहता है कि जो बच्चे गूंगे पैदा होते हैं वह सब उनकी अपनी माता का दोष है। इसी प्रकार—

२२—अधिक वायु सेवन से बालक उन्मादी, चंचल प्रकृति तथा वायु विकारों से अधिक से अधिक कष्ट सहने वाला होता है।

२३—इन दिनों में समागम करने से यदि कन्या पैदा हो तो वह व्यभिचारिणी होगी, अगर लड़का हो तो वह निश्चय ही वेश्यागामी होता है।

२४—अधिक ऊँचे स्वरों को सुनने से बहरी सन्तान घर में जन्म लेती है।

२५—आयुर्वेद कहता है कि जो रजस्वला स्त्री इन चार दिनों में अपने नखों से जमीन को खुरचती है तो उसके घर में रेंगने वाला बालक पैदा होता है।

२६—शिर में तेल लगाने अथवा कंघी पट्टी करने से निश्चय गंजे बालक का ही जन्म होता है।

२७—आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि जो रजस्वला स्त्री रजस्वला के दिनों में अधिक शोकावस्था में रहती है याद रहे कि उनकी रस रक्तादि सातों धातुएँ दुर्बल पड़ जाती हैं जिसके फलस्वरूप वह दुर्बल सन्तानों को जन्म देती है।

२८—यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि जो स्त्रियाँ ऋतुधर्म के दिनों में किसी भी कारण से उपवास रखती हैं वह सदा उदर रोगों से पीड़ित रहने वाली सन्तान को जन्म देती हैं।

२९—जो रजस्वला देवियां इन चारों दिनों में किसी भी कारण से भयभीत रहती हैं शास्त्र कहता है कि उनके गर्भ से जो भी सन्तान जन्म लेती है वह सदा छोटी सी छोटी बात पर अपने को भयभीत पाती हैं। इसलिये हे देवियो !

ऋतुधर्म के दिनन में, करो न ऐसा कर्म।
जिससे बिगड़े स्वास्थ निज बिगड़े मानव धर्म॥

अल्पायु हो सन्तति, मन से भ्रष्टाचार।
सूरदास, पागल बने, और प्रिय शृंगार॥
दृष्टि क्रोधी विष भरी, निर्लज रहें विचार।
चर्म रोगी सन्तान हो, शास्त्र कथन अनुसार॥

इस कारण

कहता आयुर्वेद है, ढोल गले मे डार।
भला तुम्हारा सोचकर, बारम्बार प्रकार॥
जो कुछ भी मैंने कहा, सभी तुम्हारे हेत।
अब तुमरा कर्तव्य है, पढ़ो खोल कर नेत॥
दोषों से उपरोक्त के, बची रहे जो नार।
प्राप्त करे शुभ सन्तति, देही का उपकार॥
इनको सोच विचार कर, यदि चलोगी आप।
दूर रहेंगे आप से, निश्चय तीनों ताप।

इसलिये हे देवियो! रजोदर्शन के दिनों में कृत असावधानियों के फलों से बचने के लिये उपरोक्त शास्त्रोक्त बातों पर सदा ध्यान रखती हुई अपने सुन्दर तथा शोभायुक्त स्वास्थ्य की रक्षा करती रहो जिसके फल स्वरूप तुमको पीछे पछताना न पड़े। अतः जो विचार-वान देवियाँ होती हैं वह अपनी विवेक बुद्धि द्वारा अपने अनमोल मानव जीवन की रक्षा करती हुई नाना प्रकार

की शारीरिक और मानसिक यातनाओं से बची रहती हैं।

आज से पचास साठ वर्ष पूर्व का अनुभव हमें बतला रहा है कि उस समय की स्त्रियाँ जितना अधिक आयुर्वेदोक्त नियमों का पालन करती थीं वह उतना ही अधिक अपने स्वास्थ को निर्मल शुद्ध और पवित्र रखती हुई उत्तमोत्तम सन्तान को जन्म देकर देश जाति और धर्म की रक्षा कर सकती थी परन्तु आज वह सब कुछ देखने में नहीं आ रहा। कारण कि—

जब से हमारी पवित्र देवियों पर पाश्चात्य सभ्यता ने अपने प्रभाव की छाप डाली है तब से हमारी भारत माता की पुत्रियां ने पूर्व कथित नियमों का उलंघन कर अपने गन्दे और मलिन खान पान, गन्दी संगत, तथा गन्दी पुस्तकों के पाठ से अपने को निर्बल, साहसहीन, आलसी, रोगी, दुखी, और अल्पायु बना दिया है जिससे हमारा जीवन दिन प्रति दिन दुख का जीवन बनता चला जा रहा है।

मानवता जब से गई, खोटे बने विचार।
पढ़ना गीता वेद का, मन से दिया विसार ॥१॥
पालन पर ब्रह्मचर्य के, दिया न कुछ भी ध्यान।
लाये भाव न चित्त में, शुभ सन्तति निर्माण ॥२॥

और दिया उपकार तज, त्याग दिये शुद्ध भाव।
स्वारथ बैर विरोध में, बढ़ा है जब से चाव ॥३॥
ज्ञान ध्यान पर भी दिया, नहिं कभी कुछ ध्यान।
भोग वासना में लगे, जब से हमरे प्राण ॥४॥
तब से ही हम पा रहे, स्वार्थी भ्रष्टाचार।
मूर्खा रोगी सन्तति, निज कर्मन अनुसार ॥५॥

आयुर्वेदानुसार गर्भाधान के लिये आयु विचार

आयुर्वेद शास्त्र के प्रसिद्ध ज्ञाता सुश्रुताचार्य तथा ऋषिमुनियों की आज्ञायें अपने मुक्त कंठ से हमें साफ यही उपदेश दे रही हैं कि जिसको सब विद्वान लोग मानवता की दृष्टि से उत्कृष्ट देखते हैं कि हे मानव उत्थान के प्रेमी नर-नारियों ! सदा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए कम से कम सोलह वर्ष की कन्या और पच्चीस वर्ष के पुरुष द्वारा किया हुआ गर्भाधान तुम्हारे मानव जीवन के सुख, शान्ति, आनन्द तथा समस्त ऐश्वर्यों का दाता है ।

यदि हो सके तो इस आयु से भी कुछ और अधिक युवा स्त्री पुरुष गर्भाधान द्वारा सन्तानोत्पत्ति करें तो और भी अति उत्तम लाभ को वे प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये ही सब वैद्य महानुभाव सज्जनों ने उपरोक्त आयु में दोनों दम्पत्तियों को समान वीर्य वाला अर्थात् तुल्य समर्थ वाला कहा है।

इसलिये शरीर की वृद्धि तथा क्षीणता का जैसा उत्तम वर्णन आयुर्वेद शास्त्र में आया है वैसा और किसी चिकित्सा ग्रन्थ में नहीं मिलता। इसमें यह भी भली प्रकार से बतलाया गया है कि मनुष्य की सातों धातुऐं अर्थात् रस रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि तथा वीर्य आदि, जिनका कि इस पुस्तक के आरम्भ में यथास्थान विस्तार पूर्वक वर्णन किया जा चुका है, किस समय ये सातों की सातों धातुऐं अपक्वावस्था में होती हैं और कब तक पक जाती हैं तथा फिर ये कब क्षीणता की ओर गमन करने लगती है।

धर्मशास्त्रों का कहना है कि मनुष्य को चाहिये कि गर्भाधान आदि संस्कारों के करने के लिये आयुर्वेद का जितना भी ज्ञान प्राप्त कर सकें अवश्य करें। जिससे वह अपने स्वास्थ को हर प्रकार से ठीक रखता हुआ सर्व

प्रकार के सांसारिक सुखों को प्राप्त कर अपने घर में बलशाली सन्तान उत्पन्न कर सकें।

इसलिये भारतमाता के सच्चे सपूतो! शूर, वीर तथा ऋषि मुनियों की सन्तानो! आज अपनी भारतमाता का फिर से नाम उज्ज्वल करने के लिये राम जैसे माता पिता के आज्ञाकारी, भरत जैसे भ्रातृ प्रेमी, अर्जुन तथा भीम जैसे योद्धा, दयानन्द जैसे निर्भीक ब्रह्मचारी तथा देश-भक्त और ध्रुव तथा प्रह्लाद जैसे प्रभुभक्त जैसी उत्तम से उत्तम सन्तानों का प्रसार करो। इसी में तुम्हारी शोभा और सच्ची देश भक्ति है।

इससे ही हम सबमें प्रेम की वृद्धि, शान्ति तथा ज्ञान का वास होगा तथा साथ साथ में अपने कर्तव्य कर्म का पालन भी हो जायगा जो कि मानव जाति का अति आवश्यक धर्म और कर्तव्य कहा गया है।

मानव समाज की तीन अवस्थायें

आयुर्वेद का कहना है कि मानव समाज को अपने जीवन काल में तीन प्रकार की अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है जिसमें प्रथमावस्था का नाम है वृद्धि। यह प्रायः मनुष्य में सोलह वर्ष की आयु तक रहती है।

इसको दूसरे शब्दों में बाल्यावस्था भी पुकारा जाता है। इस अवस्था में मनुष्य के भीतर रहने वाली उपरोक्त सातों प्रकार की धातुओं की वृद्धि होती हुई धीरे धीरे पक्वावस्था को प्राप्त होती रहती है। इसके अतिरिक्त सब अंग प्रत्यंग भी बढ़ते तथा कुछ कुछ पुष्टि को प्राप्त होते रहते हैं।

यह वृद्धि तथा पुष्टि का पूर्ण विकास मनुष्य के पच्चीसवें वर्ष की आयु तक चलता रहता है जिससे मनुष्य में सब प्रकार तेज, ओज, सामर्थ्य, शक्ति, बल और बुद्धि आदि विशेष रूप से आ जाते हैं। इसे ब्रह्मचर्य अवस्था भी कहा गया है। इसलिये इस काल में विद्याध्ययन करके अपने को ब्रह्माज्ञा में लगाने का शास्त्रों ने आदेश दिया है।

इसके उपरान्त मनुष्य के शरीर की द्वितीयावस्था आरम्भ होती है जिसका नाम यौवनावस्था है। यह अवस्था मनुष्य में छब्बीसवें वर्ष से लेकर लगभग चालीसवें वर्ष तक अपना विशेष कार्य करती है। अर्थात् जितना भी जीवन भर के लिये मनुष्य को पुष्टि चाहिये वह सबकी सब प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार प्राकृतिक नियमानुसार ज्यों ज्यों आयु अधिक होती जाती है त्यों त्यों मनुष्य के शरीर का वीर्य भी क्षीणता को प्राप्त होता चला जाता है। इसलिये तृतीयावस्था को निर्बलावस्था के नाम से पुकारा जाता है परन्तु जो नर नारी गृहस्थ में रहते हुए अपने जीवन को संयमता में रखते हैं उनका शरीर अति निर्बल नहीं होने पाता।

इस प्रकार प्रत्येक नर नारी को अपने जीवन की तीन अवस्थाओं से लांघ कर अपनी मानव कर्म भोगावस्था को अर्थात् सन्तानोत्पत्ति के कार्य को बन्द कर देना होता है जिससे कि शरीर में विशेष निर्बलता न आ कर शेष का जीवन अर्थात् तृतीय वानप्रस्थावस्था सुखमय व्यतीत हो सके।

देखिये सुश्रुताचार्य वैद्य महोदय अपनी बनाई हुई सुश्रुत संहिता के सूत्र स्थान के पैंतीसवें अध्याय में हमारे कल्याण के लिये कैसी उत्तम शिक्षा निर्धारित करते हैं जिससे कि हमारा जीवन सुख और आनन्द प्राप्त करता रहे।

उत्तम सन्तान हित पचीस वर्ष के उपरान्त पुरुष जाति में सामर्थ्य का प्रमाण

पंचविंशे ततोवर्षे पुमानारी तु शोडषे ।
समत्वा गत वीर्यौ तौ जानीयात् कुशलोभिषक् ॥१॥

उन षोड़श वर्षायाम प्राप्तः पंच विंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भ कुक्षिस्थ स विपद्यते ॥२॥

जातो वा न चिरंजीवेज्जो वेद्वा दुर्वलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्त बालायाम गर्भाधानं न कारयेत् ॥३॥

सुश्रुत शरीर स्थान अध्याय १०

देखिये सुश्रुत संहिता के बनाने वाले के प्रमाणों का सबके सब विद्वान लोग आदर करते हुये अपने बनाये ग्रन्थों में हमें समझाते हैं कि विवाह और गर्भाधान का वही समय उचित और अनुकूल है जबकि कन्या की आयु कम से कम सोलह वर्ष की और पुरुष की आयु पचीस वर्ष की हो।

क्योंकि जितना सामर्थ्य अर्थात् बल सोलह वर्ष की कन्या में आ जाता है उतना ही बल पुरुष को पचीसवें वर्ष की आयु में सृष्टि नियमानुसार प्राप्त हो जाता है।

अर्थात् दोनों में सत् सन्तान उत्पन्न करने का सामर्थ्य आ जाता है।

इसी प्रकार दूसरे तथा तीसरे श्लोकों में यह बतलाया गया है कि यदि सोलह वर्ष से न्यून अवस्था वाली स्त्री में पचीसवें वर्ष से कम अवस्था वाला पुरुष गर्भाधान करता है तो वह गर्भ उदर में ही बिगड़ जाता है। यदि किसी कारण से उत्पन्न भी हो जाय तो अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकता अगर कदाचित् रह भी जाय तो उसका शरीर और इन्द्रियाँ अति निर्बलावस्था में होती है।

इसलिये अत्यन्त बाला अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था से कम अवस्था की स्त्री में गर्भाधान नहीं करना चाहिये। इसलिये जो नर नारी अपने कुल में दीर्घायु, शान्तिवान, बुद्धियुक्त, पराक्रमी, विद्वान तथा उत्तम सन्तान चाहें तो उन्हें चाहिये कि वे उपरोक्त आयु का अवश्य ध्यान रख करके अपनी प्राणप्रिय सन्तान का निर्माण करें।

इसी प्रकार चरक संहिता अध्याय ८ में एक स्थान पर पाठ आया है कि पुरुष की बीस वर्ष की आयु से पचीसवें वर्ष की आयु तक ही पुरुष के वीर्य में वह सन्तानोत्पत्ति के पैदा करने वाले प्रबल कीटाणु आ कर

बनने आरम्भ हो जाते हैं जिनसे कि सुन्दर सन्तान पैदा होने की पूर्ण आशा रक्खी जा सकती है जिनका सिल-सला २१ वें वर्ष से २५ तक जारी रहता है।

इसलिये पच्चीस वर्ष वाला पुरुष ही श्रेष्ट सन्तान उत्पन्न करने में उत्तम कहा गया है और यह शक्ति पचीसवें वर्ष से लेकर पैंतीसवें वर्ष तक हर एक प्रकार से परिपूर्ण रहती है।

इसके उपरान्त फिर धीरे २ क्षीण होती चली जाती है अर्थात् शास्त्रानुसार प्रथम के ही चार या पाँच बच्चे अच्छे, हृष्ट, पुष्ट और स्वस्थ बन सकते हैं जो कि देश और जाति की शोभा को चार चाँद लगा सकते हैं।

इसी प्रकार ज्यों २ मनुष्य की आयु अधिक होती चली जाती है त्यों २ वीर्य की वास्तविक शक्ति भी क्षीण होती चली जाती है जिससे चार या पाँच बच्चों के बाद की जो भी सन्तान आती है वह हर एक बात अर्थात् विद्या, बुद्धि, बल, शक्ति, तेज, ओज और साहस आदि में निर्बल होती चली जाती है।

इसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्र यह भी साथ २ में बतलाता है कि अन्त में अति वृद्ध होने पर अर्थात ७०-७५ वर्ष की आयु तक शरीर में बल की रक्षा करने वाले

कीटाणु अति निर्बल और निस्तेज रह जाते हैं जिससे दिन प्रति दिन शरीर में झुरियाँ पड़नी आरम्भ हो जाती हैं।

इसलिये चरक ऋषि ने स्त्री की उत्पादन शक्ति पचपन वर्ष तक और पुरुष की पचत्तर वर्ष तक वर्णन की है। यह शक्ति उन्हीं नर-नारियों में इतने समय तक विद्यमान रह सकती है जिनका जीवन और आहार विहार संयमी है। सारांश यह है कि १५-१६ की आयु से पूर्व पुरुष के शुक्र में कीटाणु नहीं होते परन्तु जो मनुष्य अपने जीवन में वाजिकरण औषधियों का अधिक सेवन करते हैं वही अपने वीर्य कीटों को कुछ अधिक काल तक बलवान बनाये रखते हैं।

मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ३५ से ३७ तक हमारे कल्याण के लिये ऋतुदान का समय मनु जी महाराज ने इस भांति निश्चय किया है। कि

पुरुष को चाहिये कि वह सदा जो स्वभाव से ही सोलह रात्रियाँ प्रकृति के नियमानुसार ऋतुकाल की कही गई हैं उनमें भी अपनी बुद्धि से प्रथम की चार, एकादशी तथा अति दोषयुक्त त्रयोदशी रात्रि का सर्वथा परित्याग कर शेष की दश ऋतुकाल की रात्रि मे ही अपनी स्त्री से

समागम करें और अपनी स्त्री के विना कभी भी किसी अन्य स्त्री का भूल करके भी मन में ध्यान न लाये तथा स्त्री को भी इसी प्रकार उचित है कि वह भी अपने विवाहित पुरुष को छोड़कर अन्य पुरुषों से सदा दूर रहे ऐसा धर्मशास्त्रों का आदेश है।

उपरोक्त कहे वचनों की पुष्टि के लिये अथर्ववेद कांड ३, अध्याय २, सूक्त १० और मन्त्र ४ हमें साफ बतला रहा है कि जो स्त्री ऋतुकाल की प्रथम चार रात्रियों के साथ पर्व तथा निषेध तिथियों का त्याग करती हुई शेष उत्तमोत्तम शास्त्रोक्त रात्रियों में अपने पति को प्राप्त होती है अर्थात केवल सन्तानार्थ पति सहवास करती हैं वह बड़ी शोभाशालिनी तथा महा महिमा के योग्य है क्योंकि उससे वही सन्तान आती है जो कि अच्छे से अच्छे गुणों तथा विचारों से युक्त और माता पिता के यश व कीर्ति को चार चाँद लगाने वाली होती है।

इसी प्रकार अथर्ववेद कांड ३, अध्याय १, सूक्त १० और मण्डल ६ में परमात्मा स्वयं पुरुषों को उपदेश दे रहा है कि हे मनुष्यों प्रजा प्राप्ति के हित तुम सदा ऋतुकाल में ही स्वभार्या से समागम करो अर्थात् ऋतु, मास, दिन तथा समय का विचार और सम रात्रियाँ वीर्य प्रधान

होती हैं तथा विषम रात्रियाँ आर्तव प्रधान का भी साथ साथ ध्यान रखते हुये शुद्ध आर्तव से युक्त नारी का ऋतुकाल में समागम करे।

इसी प्रकार संस्कार-चन्द्रिका १६० पृष्ठ पर ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५०, अध्याय १० और मन्त्र २ हमें बतला रहा है कि जिस प्रकार जल के वाष्प से भरा हुआ पवन ठीक ऋतु के नियत समय पर ही चलता है इसी प्रकार—

हे पुरुषो! तुमको भी चाहिये कि गर्भाधान नियत समय पर करो अर्थात् ऋतुकाल का ही ग्रहण करो। अथवा जिस प्रकार सूर्य अस्त होने के उपरान्त तारागण रात से मेल और सूर्योदय होने पर उससे वियोग करते हैं इसी प्रकार हे पुरुष! तुम्हें भी इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि जब तक दिन में सूर्य का प्रकाश रहे तब तक का सर्व समय त्याग करके केवल आयुर्वेदोक्त नियमानुसार रात्रि में ही सन्तति निर्माण हित स्वभार्या से प्रेम पूर्वक समागम कर। क्योंकि रात्रि में किया संभोग एकाग्रचित्त और प्रसन्नतापूर्वक होने से मनोवांछित सन्तान का हेतु होता है।

ऋतुगामी पुरुष के लक्षण

१—संस्कार-चन्द्रिका का लेखक संस्कार-चन्द्रिका के गर्भाधान प्रकरण में अपने एक लेख में लिखते हैं कि एक अंग्रेजी डाक्टर जिसका नाम कॉवन है वह ऋतुकाल की महिमा के सम्बन्ध में पृष्ठ ११७ वा १६४ पर लिखते हैं कि वही पुरुष ऋतुगामी कहलाता है जो कि एक मास में केवल एक वार ही सन्तानोत्पति के लिये अपनी स्त्री से समागम करता है।

२—वह पुरुष भी ऋतुगामी कहलाता है जिसमें कि सन्तानोत्पति की पूर्णशक्ति विद्यमान है अर्थात् जो संयम से रहना जानता है तथा अपने धार्मिक और सन्तोषी जीवन के कारण केवल ऋतुकाल में ही सन्तानोत्पति के लिये स्वभार्या से सम्बन्ध करता है तथा फिर गर्भस्थिति के पश्चात् भी दो अथवा तीन वर्षों तक ब्रह्मचर्य व्रत का जीवन विताता है।

जो लोग यह कहते हैं कि तीन वर्ष तक ब्रह्मचारी रहने से पुरुष की सन्तानोत्पति की शक्ति निर्बल पड़ जाती है वह एक महान भूल में हैं। प्रत्युत जो पुरुष ऋतुगामी नहीं होते उनकी शक्ति संघात अवश्यमेव

निर्बल पड़ जाती है तथा वह फिर शक्ति संघात के निर्बल साधन धीरे २ पाचन शक्ति को भी निर्बल कर देते हैं जिसका अंत में परिणाम यह निकलता है कि उसे सदा कब्ज रहने लगता है, कुपच्य, गठिया, और राज यक्ष्मादि नाना रोग धीरे २ आ दबाते हैं। परन्तु जो संयम द्वारा अपने को ऋतुगामी बनाये रखते हैं वे सदैव बलवान निरोग, स्वस्थ, प्रेम और आनन्द का जीवन बिताते हैं।

जैसे कोष में जमा किया हुआ धन कभी दुख नहीं देता प्रत्युत समय २ पर सुख का साधन होता है इसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का किया हुआ पालन मनुष्य जीवन के हर कार्यों से सुख शान्ति और समस्त प्रकार के लौकिक तथा पारलौकिक कार्यों में सिद्धि देने वाला ही होता है। इसीलिये इस पुस्तक के आरम्भ में इस ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन कर देना अति उचित समझा है। इसके विपरीत जो मनुष्य अपनी संचित धन राशि को संचय करने के स्थान पर व्यय करते रहते हैं वह फिर समय आने पर हाथ मलमल कर पछताते हैं।

कौन पुरुष ऋतुगामी नहीं हो सकते

१—जिन पुरुषों का खान पान मलिन है अर्थात्

जो मांस, मदिरा, अण्डे, केक आदि का प्रयोग करते हैं उनकी बुद्धि अति मलिन होने के कारण अपने कुछ कल्याण का मार्ग नहीं सोच सकती जिसके फल स्वरूप मनुष्य को ऋतुगामी होने का ध्यान तक भी नहीं आता।

२—जो नर नारी अधिक निकम्मे रहते हैं उनकी इन्द्रियां भी कुछ न कुछ ऐसे मार्गों में घूमती रहती हैं जिससे मनुष्य ऋतुगामी होने से बाधित हो जाता है इसलिये शास्त्र कहता है कि मनुष्य को चाहिये कि वह अपनी इन्द्रियों को हर समय किसी न किसी उपयोगी कार्य में लगाता रहे।

३—जो नर नारी विश्राम के समय में भी अपने २ बिस्तरों पर पृथक २ शायन नहीं करते उनका ऋतुगामी होना भी असम्भव है।

४—स्वास्थ शास्त्र का कहना है कि जो मनुष्य अति आलस्य के वशीभूत हो सूर्य के निकलने के बाद तक भी सोए पड़े रहते हैं उनके लिये भी ऋतुगामी होना कठिन है कारण कि उनके पवित्र स्वास्थ और विचारों में अन्तर आ जाता है।

५—जो जन क्षुधा से अधिक खाते पीते हैं या

रात्रि को देर से सोते हैं अथवा जो मिष्ठान्न, अचार, चटनी, तैल और मिरच आदि का प्रयोग करने के आदी हैं उनका ऋतुगामी होना भला कैसे पाया जा सकता है।

६—जिन नर नारियों ने अपने आचार विचार को गन्दी संगत के कारण अपवित्र बना दिया है वह भी ऋतुगामी नहीं पाये जाते।

७—जिनका चित्त उपन्यासों के पढ़ने, सिनेमों के देखने और नाना प्रकार के वैश्याना गानों के सुनने में लगा हुआ है उनका तो ऋतुगामी होता नितान्त ही असम्भव है।

८—जो बुद्धिहीन मनुष्य अन्य लोगों के उच्छिष्ठ बर्तनों में खाना पीना खा रहे अथवा असत्य और छल कपटादि से धनोपार्जन कर रहे हैं वह कभी भी ऋतुगामी कहलाने के योग्य नहीं हो सकते।

९—जिनकी कर्म और ज्ञान दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ भोगासक्ति में आसक्त हैं उनके लिये स्वास्थ शास्त्र कहता है कि वह लाख यत्न करने पर भी ऋतुगामी नहीं बन सकते।

१०—इसी प्रकार जो जन अति स्वार्थी, लोभी तथा मन, वाणी और देह द्वारा पर जीवों की किसी भी भांति

हिंसा करने वाले हैं उनका जीवन भी कभी ऋतुगामी नहीं हो सकता।

इसलिये भाई और वहिनो! यदि तुम्हारी यह प्रबल इच्छा है कि हम आजीवन सुखी, निरोग और आनन्दित रहें तथा हमारी सन्तान भी कुल दीपक हो, बुद्धिमान, तेजस्वी, पराक्रमी और सद् विचारों से परिपूर्ण हो तो तुम्हें ऋतुगामी होने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ऐसा आयुर्वेद का निश्चय मत है।

ऋतुगामी पुरुष की महिमा

शास्त्र कहता है कि जो ऋतुगामी पुरुष होता है वह सदा और हर प्रकार मे अपना जीवन संयमता से बिताते रहने का यत्न करता है। वह स्वयं ही अपनी पूर्ण रूप से सहायता करता हुआ औरों की सहायता और परोपकार करने योग्य बन जाता है। वह अपनी मातृ भूमि का सच्चा सेवक होने के कारण अपने अनुयायी नवयुवकों को शान्ति सत्य, धैर्य का उज्ज्वल दीपक दिखा कर सन्मार्ग पर ला कर सच्चा ब्रह्म पुजारी बन सकता है। तथा—

वह अपने आत्मिक और तेजस्वी बल द्वारा सब प्रकार के शीतोष्ण आदि अनेकों संकटों तथा आत्मोन्नति

मार्ग में बाधा डालने वाले निन्दा, चोरी, वैर, विरोध आदि पर विजय प्राप्त कर अत्यन्त दृढ़ता, त्याग और विश्वास के साथ अपने भावी जीवन को ऊँचे से ऊँचे शिखर पर ले जाता है। इसलिये—

उसे फिर नाना प्रकार की पवित्र शक्तियाँ स्वयं ही आ आकर उसे निर्मल बुद्धि, विद्यानिधि, श्रद्धा, हरि प्रेम और विश्वास से ओत प्रोत कर देती हैं। यह सब कुछ है ऋतुगामी रहने वाले और संयम से जीवन बिताने वालों के लिये आनन्दमय फल।

इसलिये सत् विद्याओं से परिपूर्ण शास्त्र और विद्वान लोग दिन रात हमें यही शिक्षा दे रहे हैं कि जो दम्पति अपने को उज्ज्वल बनाना चाहें उन्हें आवश्यक है कि वह अपने को दिन रात श्रेष्ठ बनाने की इच्छाओं को अपने जीवन में सदा ही धारण करते रहें।

ऋतुगामी होने के साधन

(१) ईश्वर-भजन—इससे मन में शान्ति, प्रेम, ज्ञान, सरलता और नम्रता का आदान प्रदान होता है।

(२) सन्ध्या जप तप—इससे राग द्वेष की निवृत्ति,

धर्म कर्म के पालन के भाव तथा त्याग के विचार उत्पन्न होते हैं।

(३) स्वाध्याय और सत्संग—इससे बुद्धि शुद्ध निर्मल और पवित्र बन मंगलमय कार्यों में ले जाने वाली हो जाती है।

(४) सेवा, परोपकार और दान—इनके करने से अहंकार, अभिमान का नाश होकर मनुष्य अपने कर्तव्य कर्म को समझने लग जाता है।

(५) दोनों कालों में ईश्वर प्रार्थनोपासना आदि के करने से मनुष्य अपनी लौकिक तथा पारलौकिक कामनाओं की सिद्धि भगवद् कृपा से प्राप्त करता हुआ मन और इन्द्रियों पर एक दिन उत्तम विजय प्राप्त कर लेता है।

उपासना के गुण

उपासना के गुणों का वर्णन करते हुए महर्षि दयानन्द जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुलास में लिखते हैं कि मनुष्य आठ पहर में एक घड़ी भी सच्चे हृदय से परम पिता परमात्मा का ध्यान करता है तो वह निश्चय ही सदा उन्नति को प्राप्त होता है।

जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है ठीक वैसे ही परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से मनुष्य के सब दोष दुख छूट कर परमेश्वर के गुण कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।

इसलिये मनुष्य को उचित है कि वह परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थनोपासना का कभी परित्याग न करके नित्यप्रति नियमपूर्वक रहे। इस प्रकार नित्याभ्यास से मनुष्य में आत्मा का बल इतना बढ़ जाता है कि वह फिर पर्वत के समान दुख प्राप्त होने पर भी नहीं घबराता। अर्थात् उसकी सहनशीलता की शक्ति बढ़ जाती है।

इसी प्रकार यजुर्वेद अध्याय ११, मंत्र का अर्थ बतलाता है कि उपासक जब अपने मन को ईश्वर में लगाता है तो ईश्वर भी अपनी महती कृपा से उसकी बुद्धि को अपने में युक्त कर लेता है अर्थात् जो उपासना करते हैं उनमें अवश्य प्रकाश आता है। यह ईश्वर का प्रकाश ही आत्मा का बल है।

ऋतुगामी के लिये आदेश

इसलिये ऋतुगामी होने के लिये मनुष्य को यथा-

शक्ति आत्मबली होना चाहिये और आत्मबल वही मनुष्य प्राप्त कर सकते हैं जो नित्यप्रति नियमपूर्वक भगवद् प्रार्थनोपासना आदि करने के अभ्यासी हैं।

ऋतुगामी पुरुष के लिये अति आवश्यक है कि वह अपनी दिनचर्या को पवित्र और नियम में रक्खे। अतः स्त्री और पुरुष दोनों को चाहिये कि गृहस्थ के कार्यों से जब २ भी वह निवृत्त हों अथवा जिस समय भी रिक्त अवकाश हो इधर-उधर की बातों में न जा कर कुछ ऐसी २ पुस्तकों का स्वाध्याय करते रहें कि मनुष्य का मन पवित्र हो, आत्मा की उन्नति करे, हृदय में भगवान के प्रति प्रेम की जागृति हो।

शास्त्र कहता है कि जो जन ऋतुगमन के नियमों पर चलने के प्रबल इच्छुक हों उन्हें चाहिये कि वह कभी भूल करके भी ऐसी पुस्तकों का अध्ययन न करें जो मानव के मन को काम-वासना की ओर ले जाने में सहायक हों।

इसी प्रकार स्त्रियों के नाच गाने और सिनेमों के रंग रूपों से भी विचारवान पुरुषों को सदा दूर ही रहना कल्याणकारक है। यदि आप सिनेमा, थियेटर आदि देखना चाहते भी हैं तो सर्वशक्तिमान भगवान के संसार-

रूपी सिनेमा घर सन्त महात्माओं के दर्शन, भक्ति रस से भरे गीत, सन्तों की प्रेममय वाणी, पर्वत, नदियाँ, झरने, और मनोहर वाटिका आदि ईश्वर के बनाये चित्रों को देखिये जिनसे कि आपको परम आनन्द, शान्ति, और ज्ञान मिल सकता है।

इनके अतिरिक्त आप अपने घरों में ईश्वर के दिये हुए अनमोल और सुन्दर दान रूपी आपके प्राण प्यारे बच्चे, विद्यमान हैं। जो कि आपको अति आनन्द देने तथा आपका दिल बहलाने वाले हैं।

इस प्रकार जो मनुष्य अपनी दिनचर्या को पवित्र बनाता हुआ अपने जीवन को बिताता है वही मनुष्य सच्चे ऋतुगामी बन अपने आचार विचार और भाव भावनाओं के आश्रय परम पवित्र बन भगवान के इस मनोहर क्षेत्र मे उत्तमोतम सन्तानों का निर्माण कर भगवान का सच्चा पुजारी बन सकता है। यही मानव समाज हित वेदों ने पवित्र आज्ञा दी है।
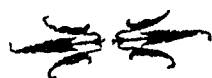
पंचम अध्याय

गर्भाधान हित षोड़श रात्रियों का विचार

आयुर्वेद ने स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल प्राकृतिक नियमानुसार सोलह रात्रियों का वर्णन किया है जिसका पूर्व भी एक स्थान पर संकेत कर आया हूँ। रजोदर्शन के दिन से लेकर १६ रात्रियों तक ऋतुकाल रहता है। इनमें प्रथम की चार अथवा छे रात्रियाँ जन कल्याण के लिये स्वास्थ तथा धर्मशास्त्रों ने अति घृणित होने के कारण निन्दित की हैं। अर्थात्—

इन रात्रियों में पुरुष स्त्री का स्पर्श और स्त्री पुरुष का संग कभी भूल कर के भी न करे। केवल इतना ही नहीं

प्रत्युत उस रजस्वला के हाथ का छुआ पानी भी पीना मनुष्य के मन और आचार विचार को भ्रष्ट कर देता है।

इसलिये इन दिनों में जैसे रजस्वला की अन्य असावधानियों के कारण उनकी सन्तान पर बुरा प्रभाव पड़ता है, इसी भाँति यदि रजस्वला अपने हाथ का छुआ अन्न जल भी अपने किसी बच्चे को प्यार वश दे देती है तो प्रकृति सिद्धान्तानुसार उसके उस बच्चे के गन्दे संस्कार बनने में भी तनिक देर नहीं लगती। तत्काल ही उस मलिन खान पान का प्रभाव उस बच्चे पर भी पड़ जाता है। अतः रजस्वला को पूर्व में कही असावधानियों से बचने के साथ २ इस बात पर भी पूर्णरूप से ध्यान देना आवश्यक है।

जैसे आयुर्वेद के ग्रन्थों तथा मनुस्मृति आदि शास्त्रों ने प्रथम की चार अथवा छे रात्रियां ऋतुदान देने में अर्थात् गर्भाधान करने में त्याग्य हैं। इसी प्रकार ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी परस्पर संग करने में निषेध की है अर्थात् सोलह रात्रियों में इन छे अथवा आठ निषेध रात्रियों का त्याग कर शेष की आठ या दश गर्भाधान हित प्रशस्त कही गई हैं।

परन्तु प्रथम की छः रात्रियां के त्याग के विषय में चरक ऋषि जी महाराज ने अपनी चरक संहिता के पूर्व भाग में स्पष्ट तौर से लिखा है कि प्रथम की चार रात्रियां छोड़ देने के स्थान पर प्रथम की छः रात्रियां त्याग कर सप्तम रात्रि से सन्तानोत्पति के हित मनुष्य को वीर्य दान देना अति लाभदायक है। कारण कि यदि किसी भी कारणवश ऋतु एक दो दिन और भी रहे तो उसकी छः रात्रियां तक तो शुद्धि अवश्य हो ही जाती है तथा स्त्री में रक्त प्रवृति के कारण जो कुछ निर्बलता भी आ जाती है वह भी कुछ दूर हो जाती है। जिसका विशेष विवरण आगे चल कर यथास्थान बतलाया जावेगा।

निन्ध्यास्वष्टासु चान्यासु स्त्रियां रात्रिषु वर्जयन्।
ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्।

मनु० अध्याय ३, श्लोक ५०

जिसका अर्थ हमें स्पष्ट रूप से बतला रहा है कि जो मनुष्य इन अष्ट निन्दित रात्रियों में स्वभार्या संग से दूर रहता है वह गृहस्थ में रहता हुआ भी ब्रह्मचारी है।

आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र हमारा ध्यान इस ओर भी आकर्षित कर रहे हैं कि जहाँ ऋतुकाल आरम्भ होने पर प्रथम की छः रात्रियाँ तथा ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि

संग के लिये त्याज्य हैं वहाँ पर इन ऋतुकाल के सोलह दिनों में यदि जिस रात्रि को पूर्णमासी अमावस्या, दोनों पक्षों की अष्टमी अथवा चतुर्दशियाँ आ पड़ें तो उनको भी अपनी स्वास्थ्य-रक्षा तथा धर्म के विचार से गर्भाधान के लिये अवश्यमेव त्याग कर देना चाहिये अर्थात् इनमें भी स्वभार्या संग नहीं करना चाहिये। इनके दोनों का कारण आगे चलकर यथास्थान विस्तार पूर्वक तथा दृष्टान्तों सहित वर्णन किया जायेगा।

युग्मायुग्म रात्रियों का विचार

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्तवे स्त्रियम् ॥

उपरोक्त आयुर्वेद का श्लोक हमें बतला रहा है कि जिन मनुष्यों को पुत्र प्राप्ति की इच्छा हो तो वे आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं रात्रि में गर्भाधान करें अर्थात पुत्र प्राप्ति के लिये ये पाँच रात्रियाँ श्रेष्ठ हैं कारण कि इन युग्म रात्रियों में स्त्री का आर्तव पुरुष के वीर्य की अपेक्षा कम बल वाला होता है इसलिये लड़के का जन्म होता है।

इसी प्रकार सातवीं, नौवीं और पन्द्रहवीं आदि रात्रियों में स्त्री का आर्तव पुरुष के वीर्य की अपेक्षा अधिक बल वाला हुआ करता है अतः इन रात्रियों में गर्भाधान करने से सुन्दर कन्या का घर में जन्म होता है। अतः जिनको कन्या की इच्छा हो उन्हें चाहिये कि उपरोक्त तीन रात्रियों में संभोग करें।

परन्तु हमारे मनु आदि धर्मशास्त्रों में वर्णन आया है कि जो मनुष्य जितना उत्तरोतर रात्रियों में केवल सन्तानोत्पति के लिये गर्भाधान करते हैं वह उतनी ही अधिक से अधिक उत्तम सन्तान को पाते हैं जो कि आपको अधोलिखित चार वाक्यों से स्पष्ट प्रतीत हो जायेगा।

धर्म शास्त्र सब कह रहे, सुनो जरा धर ध्यान।
उत्तरोतर यूं रात में, करोगे तुम आधान॥
देखोगे निज गृह में, वह उत्तम सन्तान।
वीर, धीर धर्मात्मा, यशवन्ता गुणवान॥
परिपूरण सामर्थ्य से, शुद्ध बुद्धि भंडार।
मधुभाषण सत्कर्म से, जिस मन हो अति प्यार॥
जिसके सुन्दर ओंठ हों, चेहरा स्वर्ण समान।
नैनों में हो नम्रता, बल में सिंह समान॥

वाणी भी अति मधुर हो, साधु भाव विचार ।
सबका आदर मानकर, ले निज जीवन तार ॥
मुख पर तेज प्रचंन्ड हो, दृष्टि गीद समान ।
हृदय परम पवित्र हो, रहे जो आयुष्मान ॥

इस कारण—

भाई बहिनो जब जब करो, तुम उत्पन्न सन्तान ।
उत्तरोत्तर शुभ रात का, रखो सर्वदा ध्यान ॥
जिससे तुमरे गृह में, जो भी हो सन्तान ।
होवे शोभाशालिनी, दीर्घायु यशवान ॥
जिससे अपने देश का, हो जाये उपकार ।
पालन हो निज धर्म का, धर्मशास्त्र अनुसार ॥
जिस घर में आ जात है, ऐसी शुभ सन्तान ।
घर शोभे मन शान्त हो, सकल जगत सन्मान ।

उत्तरोतर रात्रि में गर्भाधान की श्रेष्ठता का प्रमाण

इसके विषय में सुश्रुत शरीर स्थान श्लोक ३० में सुश्रुताचार्य जी ने भी वर्णन करते हुए लिखा है कि—

ऐषुत्तरोतरं विद्यादायुरारोग्यं मेव च
प्रजा सौभाग्यं मैश्वर्य बलं च दिवसेषु वै ॥

भावार्थ—जो नर नारी जितना भी उत्तरोत्तर रात्रियों में नियमानुकूल और प्रेमपूर्वक केवल उत्तम सन्तान हित समागम करते हैं उनके घर में जो भी सन्तान आती है वह अति दीर्घायु, सबल, रोगों से रहित, सौभाग्य, परम ऐश्वर्य और बल से युक्त होती है। ऐसा आयुर्वेद का निश्चय मत है।

वीर्य तथा रज की प्रबलता से पुत्र पुत्री का निर्माण

पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे भवत्यधिके स्त्रिया।
समे पुंमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पेच विपर्ययः॥

आयुर्वेद का उपरोक्त श्लोक हमें यह भी बतला रहा है कि पुरुष के वीर्य की अधिकता और अति बलवान होने से निश्चय ही घर में पुत्र की उत्पत्ति होती है तथा इसी प्रकार रज की प्रबलता और अधिकता से घर में बलवती कन्या का जन्म होता है। तथा दोनों अर्थात् रज और वीर्य के तुल्य बराबर होने से नपुंसक पुरुष वा वन्ध्या कन्या का जन्म हुआ करता है। जैसे घृत और मधु के बराबर हो जाने से विष बन जाता है ठीक इसी भांति

पुरुष के वीर्य और स्त्री के रज समान हो जाने पर नपुंसक सन्तान के होने का विकार इसमें आ जाया करता है। तथा क्षीण और अल्प वीर्य के होने से गर्भ का न रहना या गिर जाना आयुर्वेद शास्त्रों ने वर्णन किया है। इस कारण आयुर्वेद कहता है कि—

रज वीरज जितने अधिक, होते हैं बलवान।
सन्तति में उतने बढ़ें, बल शक्ति अरु ज्ञान॥
सुन्दरता भी अधिक हो, उत्तम बढ़ें विचार।
साहस विद्या धर्म में, हो जाये बहु प्यार॥
इस कारण है दे रहा, शास्त्र हमें व्याख्यान।
निज उत्तम सन्तान हित, रख निज बल पर ध्यान॥
जिनको भोग्याधिक्य से, रहता है बहु प्यार।
वह जन कभी न कर सकें, निज सन्तति उद्धार॥

ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियों में समागम के निषेध का कारण

इसी प्रकार ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि में स्त्री का आर्तव प्राकृतिक नियमानुसार सर्वथा निर्बल होता है। जिससे वीर्य को ग्रहण करने में अशक्त और कुछ अंशों में दोष उत्पादक कहा गया है जिसके फलस्वरूप सन्तान

अति निर्बल, बुद्धिहीन, दुर्बलेन्द्रिय, वन्ध्या, वक्र शरीर, आदि अनेक दोषों से परिपूर्ण होती हैं। इसलिये धर्म तथा वैद्यक ग्रन्थों ने इन दोनों रात्रियों में संभोग का सर्वथा निषेध किया है। जिससे आने वाली सन्तान माँ बाप के लिये चिन्ताजनक न बन सके।

इसके विषय में पश्चिमी डाक्टरों ने अनेक बार इसकी परीक्षा की और अन्त में अपनी निश्चयात्मक और विचार बुद्धि से इस परिणाम पर पहुँचे कि आयुर्वेद के ग्रन्थों तथा ऋषि मुनियों ने अपने धर्मशास्त्रों में जो कुछ भी लिखा है वह, प्राकृतिक नियमानुसार पूर्णतया सत्य है, और न्याय संगत है।

याद रहे कि ऋतुकाल के सोलह दिन के उपरान्त प्राकृतिक नियमानुसार गर्भाशय का मुख बन्द हो जाया करता है। अतः ऋतुधर्म की सोलह रात्रि के उपरान्त गर्भ स्थिति के होने की किसी प्रकार की कोई भी संभावना नहीं रहती। अतः सोलह रात्रि व्यतीत हो जाने पर विचारवान पुरुषों को चाहिये कि वह अपने अनमोल वीर्य की व्यर्थ में हानि न करें।

वन्ध्या कल्पद्रुम नामक आयुर्वेद के ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से पाठ आया है और आगे भी एक स्थल पर प्रसंग-

वश लिख आया हूँ कि जैसे सूर्य के अस्त हो जाने पर कमल का मुख भी स्वाभाविक बन्द हो जाता है इसी प्रकार ऋतुधर्म की सोलह रात्रियों के समाप्त हो जाने पर गर्भाशय का मुख भी सिकुड़ जाता है अर्थात् बन्द हो जाता है।

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता के शरीर स्थान में भी स्पष्ट लेख आया है कि—

नियतं दिवसेऽताते संकुचत्याम्बजं यथा।
ऋतौ व्यताते नार्यास्तु योनिः संवियते तथा॥

जैसे दिवस के व्यतीत होने पर कमल के निश्चय रूप से संकुचित होने में कोई सन्देह नहीं रहता इसी प्रकार ऋतु की षोडष रात्रियों के समाप्त होने पर स्त्री की योनि निश्चय रूप से संकुचित हो जाती है। यह प्रकृति का निश्चय रूप से कार्य है। जिससे उस समय योनि में गिरा हुआ उत्तम से उत्तम और पुष्ट से पुष्ट वीर्य भी अन्दर पहुँचने में असमर्थ हो जाता है। इस कारण ऋतुकाल की अवधि समाप्त होने पर प्रायः गर्भ धारण नहीं हुआ करता।

अंग्रेजी डाक्टरों का मत है कि ऋतु की रात्रियां के समाप्त होने पर गर्भाशय का मार्ग शुक्र को अपने अन्दर

आने से रोकता है अर्थात् उसे स्थान देने से साफ मना कर देता है।

गर्भाधान के लिये रात्रि शब्द का प्रयोग क्यों

अब यहाँ पर एक प्रश्न हो सकता है कि गर्भाधान के लिये केवल रात्रि शब्द का ही प्रयोग क्यों किया गया है और दिन के लिये इसका निषेध क्यों वतलाया है ?

जहाँ सुश्रुत और मनु आदि शास्त्रों ने गर्भाधान के लिये उपयोगी रात्रियों का वर्णन किया है वहाँ पर उन्होंने दिन शब्द का प्रयोग नहीं किया प्रत्युत केवल रात्रि शब्द का ही प्रयोग किया है तथा साथ साथ मध्य रात्रि, सायंकाल और मध्य दिन (दोपहर) के समयों का पूर्ण रूप से निषेध किया है जिनका विस्तारपूर्वक वर्णन आगे चलकर यथास्थान किया जायेगा।

दिन का समय तो धर्म तथा चिकित्सा-शास्त्रों के विधान के अनुसार आजीविका, धनोपार्जन तथा अन्य स्वास्थ रक्षा के साधनों को एकत्र करने के लिए कहा है संभोग के लिये नहीं।

क्योंकि स्वास्थ रक्षक शास्त्रों का कहना है कि दिन के संभोग से स्वास्थ रक्षा के वदले स्वास्थ की हानि होती

है। याद रहे कि जो किसी भी कारण को लक्ष रखकर दिन के समय संभोग करते हैं वह निश्चय ही मन्द मति, आलसी, भद्दे विचार, निर्लज और गन्दी भावना के हो जाते हैं जिससे उनका चित्त सद्कर्मों तथा दिन के काम काज में स्थिर नहीं रहता।

आयुर्वेद तथा स्वास्थ पंथानुयायी सबके सब हमें स्पष्ट रूप से बतला रहे हैं कि दिन के समय गर्भाधान के करने से जैसा कि अभी अभी ऊपर बतलाया जा चुका है हमारे शरीर में इस कार्य से उष्णता अधिक बढ़ जाती है जिससे मनुष्य की बुद्धि, दृष्टि और विचारों में हीनता आ जाती है तथा साथ साथ नाना प्रकार की शिर पीड़ा आदि रोग सन्मुख आ कर खड़े हो जाते हैं जिससे मनुष्य अपने विचारों द्वारा किसी कार्य को पूर्ण करने में असमर्थ सा हो जाता है।

जैसे ज्येष्ठ और अषाढ़ादि मासों में जब कि दोपहर के समय उष्णता की मात्रा अधिक हो जाती है तब तन्द्रा सी आने लगती है इसी प्रकार दिन के समय संभोग से मनुष्य की बुद्धि में अन्धकार सा छा जाता है।

इन्हीं हानियों का विचार करके हमारे धर्म और स्वास्थ शास्त्रों ने गर्भाधान हित अर्थात् प्रेम सहित संभोग

के लिये रात्रि के ६ बजे से लेकर ११॥ बजे तक का समय उचित और स्वास्थप्रद कहा है। जिससे स्वास्थ और धर्म दोनों की रक्षा होती रहे।

अथर्ववेद कांड ३, अध्याय २, सूक्त १०, मन्त्र ३ के उत्तरार्द्ध भाग में तथा ऋग्वेद भाष्य भूमिका के ग्रन्थ प्रमाण विषय में श्री स्वामी दयानन्द जी लिखते हैं कि गर्भाधान रात्रि में ही करना मानव समाज के लिये हितकर है तथा साथ साथ में यह भी बतलाया है कि जहाँ रात्रि में गर्भाधान करने से स्त्री पुरुष दोनों ही नाना प्रकार के रोगों से बचे रहते हैं वहाँ पर केवल रात्रि में ही गर्भाधान करने से जो भी सन्तान आती है वह अपने पूर्ण बल, शक्ति तथा धन की उन्नति करने वाली सदाचारिणी तथा तेजयुक्त आती है। क्योंकि इस समय चन्द्रमा का राज्य होता है और चन्द्रमा ही मनुष्यों में रस पैदा करने वाला है।

शास्त्र ने जिन जिन रात्रियों का निषेध किया है उन उनमें जो विचारवान स्त्री पुरुष परस्पर का संग छोड़ देते हैं वह गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मचारी ही कहलाते हैं।

आज से कुछ काल पहिले पश्चिमी दिशा के निवासी गर्भाधान के लिये रात्रि काल का प्रयोग न कर केवल दिन का ही प्रयोग करते थे। परन्तु जबसे उन्होंने हमारे ऋषि मुनियों तथा आयुर्वेद की पवित्र पुस्तकों का अध्ययन किया है तब से अब वह भी रात्रि को ही गर्भाधान का उत्तम काल अपनी पुस्तकों में वर्णन कर रहे हैं अर्थात हमारे भारतीय ऋषियों के नियमों पर आ रहे हैं।

परमात्मा की विचित्र लीला

आयुर्वेद का निम्नलिखित श्लोक हमें बतला रहा है कि—

पूर्वं पश्येदृतुस्नाता यादृश नर मंगना ।
तादृशं जनयेत् पुत्रं भर्तारं दर्शयेदतः ॥

परम पिता परमात्मा की विचित्र लीला है कि ऋतु-स्नान करने के ठीक पश्चात् स्त्री अपने प्रियतम को जैसे भी हाव भाव या चाव से देखती है तो उसे यदि उसी मास में ईश्वर कृपा से गर्भ हो जाय अर्थात् गर्भ धारण क्रिया फलीभूत हो जाय तो ठीक वैसे ही आचार विचार

हाव भाव, गुण और रंग रूप वाली सन्तान को जन्म देती है।

इसलिये हमारे धर्मशास्त्रों में आज्ञा है कि स्त्री ऋतु-स्नान के पश्चात् सब कामों को त्याग कर सबसे प्रथम अपने पति देव का ही दर्शन करे जिससे कि ठीक वैसी ही सन्तान का निर्माण हो। पतिव्रता स्त्री के लिये केवल एक पति ही परम देव है जिसके दर्शन से स्त्री परम कल्याण को प्राप्त करती है। इसलिये ऐसे समय में पति का दर्शन उसके लिये धर्म और एक परम कर्तव्य आयुर्वेद शास्त्रों ने बतलाया है। परन्तु—

यह पूर्णतया याद रखना चाहिये कि केवल दर्शन मात्र से ही कार्य की सिद्धि नहीं होती प्रत्युत दर्शन के समय मन में उस पति देव के प्रति अनन्य प्रेम तथा उसके शुभ गुणों का चिन्तन भी साथ साथ में अति आवश्यक है अर्थात् जब पति के ही सदृश सन्तान की प्रबल इच्छा हो तभी पति दर्शन की औपचारिक विधि ही आवश्यक है।

यदि किसी कारणवश पति देव कुरूप हैं या घर से कहीं बाहर गये हुये हैं तो तुम अपना या किसी भी सुन्दर महात्मा अथवा महापुरुष के चित्र का दर्शन कर लो जिस

के रंग रूप के अनुरूप तुम अपनी सन्तान को चाहती हो जिससे आने वाली सन्तान तुम्हारी इच्छानुसार स्वरूप और गुणयुक्त हो।

इसलिये हे देवियो! भारतमाता की सुपुत्रियो! तुम जैसे रंग, रूप, चरित्र, गुण और स्वभाव वाले महापुरुष जैसी सन्तान चाहती हो तो ऋतुस्नान के पश्चात् उसी की ही फोटो को देख लो या उसका मन ही मन में ध्यान जमा लो तो निश्चय ही तुम वैसी ही सन्तान को प्राप्त करोगी। मनोविज्ञान के विज्ञानी लोगों ने इसे अपने अपूर्व अनुभव की कसौटी पर भली प्रकार से घिसकर देख लिया है।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ईश्वरीय न्याय नियम के अनुसार मनुष्य के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग और हाव-भाव का पूर्ण सम्बन्ध जन्म से ही मनुष्य जाति के मस्तिष्क में ईश्वर कृपा से अति सूक्ष्मावस्था में विद्यमान रहता है। समय आने पर मनुष्य जो कुछ भी देखता, सुनता, पढ़ता या करता है तो इन सब बातों से वह अधिक बल वा शक्ति प्राप्त कर वैसा ही बन जाता है।

जैसे कि चित्र बनाने वाला चित्रकार जिस भी चित्र को बनाना चाहता है वह पहिले उस आकार और रंग रूप

को अपने मस्तिष्क में बैठा लेता है। तब वह उस चित्र को ठीक वैसा ही बनाने में समर्थ हो सकता है जैसा कि वह चित्र होता है।

इसी प्रकार जो ऋतुस्नाता स्त्री जैसे भी रंग रूप को उस पवित्रावस्था के समय में अपने मस्तिष्क में अपने प्रेम और ध्यान धारणा द्वारा बिठला लेती है याद रहे कि वह निश्चय ही ठीक वैसी ही सन्तान को प्राप्त करती है।

आजकल की पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित लोग इन बातों को ढोंग समझते हुये इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते जो कि एक महाभूल है। परन्तु अनुभवी महानुभावों का तथा अपना अनुभव स्पष्ट रूप से बतला रहा है कि उपरोक्त बातों का प्रभाव अवश्यमेव होता है जो कि अनेकों बार देखने और सुनने में आया है। इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं क्योंकि यह एक ईश्वरीय नियम और न्याय-युक्त है।

प्रभावोत्पादक छः काल

हे देवियो! यदि आप अपनी प्रिय सन्तान को स्वरूप, विद्वान्, धर्मात्मा, शूरवीर, योद्धा, ईश्वर तथा देश भक्त निश्चय रूप से बनाना चाहती हैं तो उसके लिये

निम्नलिखित छः प्रभावोत्पादक काल जो परम पिता परमात्मा ने आपको अपनी अपार कृपा और दया दृष्टि से सौंपे हैं उन समयों में आप अपनी सन्तान उच्च से उच्च पदवी तक सदा पहुँचाने का यत्न करती रहें। इसमें आप और आपकी सन्तान दोनों की परम भलाई है।

प्रथम समय—जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है कि रजस्वला के दिनों में जैसा भी आप आहार विहार या कार्य करेंगी ठीक उन्हीं गुण अवगुणों वाली सन्तान आप उत्पन्न करेंगी।

दूसरा समय—ऋतु स्नान के ठीक पश्चात जैसी भी सूरत या मूरत का आप दर्शन करेंगी या उसका ध्यान अपने मन पर अंकित कर लेंगी, सृष्टि नियमानुसार ठीक वैसे के वैसे रंग रूप वाली सन्तान को आप अपने घर में पायेंगी। ऐसा अनेकों वार अनुभव में आया है।

तीसरा समय—शास्त्र कहता है कि गर्भाधान के समय जैसा कि आगे चलकर वर्णन किया जावेगा जैसे जैसे रंग, रूप, भावों तथा विचारों को आप अपने मन में स्थान देंगी तो निश्चय रूप से वैसे ही रङ्ग रूप भाव तथा विचारों से आप अपनी सन्तान को ओत प्रोत

पायेंगी। इसलिये शास्त्र का आदेश है कि इस समय में जहाँ तक हो सके उत्तम से उत्तम विचारों को ग्रहण करती रहो।

चतुर्थ समय—गर्भस्थिति के उपरान्त जब गर्भ में जीव की क्रियायें स्पष्ट होती हैं उस समय से लेकर जब तक बालक माता के गर्भ से बाहर नहीं आता तब तक मन में जैसे २ अच्छे अथवा बुरे विचारों में आप खेलती रहेंगी अथवा जैसे गुणों वाला आदर सेवन करती रहेंगी, आयुर्वेद कहता है कि ठीक वैसे २ भावों, विचारों और गुणावगुणों वाला बालक आपकी कुक्षि से जन्म लेगा।

पाँचवां समय—जिस समय बच्चा माता के गर्भ से बाहर आते ही सबसे प्रथम अपने नेत्रों की पुतली का प्रकाश युक्त तारा जिस किसी भी जीव पर डाल देता है उस जीव के गुणावगुण उस नवजात शिशु में प्रवेश कर जाते हैं, आ जाते हैं। इसलिये आयुर्वेद के निर्माता हमारे ऋषिमुनियों का कथन है कि उस समय जो भी दाया हो वह अति स्वच्छ तथा पवित्र कपड़ों और विचारों से युक्त हो। क्रोधी, ईर्षालु और लड़की न हो प्रत्युय प्रसन्न वदन और हँस मुख हो।

छठा समय—जन्म लेने के दिन से जब तक शिशु माता का दूध पीता है तो उस काल में बालक अपनी माता के खान पान, आचार विचार, तथा अच्छे बुरे संचित संस्कारों को दुग्ध द्वारा धीरे २ अपने अन्दर ग्रहण करके ठीक वैसा ही बनाता रहता है।

इसलिये माता को चाहिये कि वह इस समय अपने को हर बात से सावधान रक्खे। यदि किसी भी कारणवश माता का अपना दूध बच्चे के लिये परियाप्त न हो तो जिस भी दूध पर बच्चे की पालना हो उसके खान पान और आचार विचार पर अवश्य नियंत्रण रक्खे।

इसलिये हे देवियो! यदि आप अपने घर को अति सुन्दर, पवित्र, शोभायुक्त तथा स्वर्ग सदन बनाना चाहती हो तो उपरोक्त छः प्रकार के समयों का हर समय ध्यान रखती रहो। यही तुम्हारा परम धर्म तथा वैदिक शास्त्रों का समुचित निचोड़ है।

अब सबसे प्रथम ऋतुस्नान के पश्चात् तात्कालिक प्रभाव डालने वाले जो देखे तथा सुने हुए दृष्टान्त हैं उनको आप के सन्मुख रखना अति आवश्यक समझता हूँ जिनके द्वारा आपको भली प्रकार समझ में आ जायेगा

कि ऋतुस्नान के ठीक पश्चात् हमारे दर्शन का प्रभाव हमारे बच्चे पर कैसा अच्छा अथवा बुरा पड़ता है।

ऋतुस्नान के पश्चात् दर्शन का प्रभाव

पहला दृष्टान्त—हमारे पड़ोस में एक खूबसूरत नौजवान का घर था। उसका नौकर पूरबिया काले रंग का था। एक बार रजस्नान के पश्चात् उसकी स्त्री ज्यों ही बाहर निकली उसे अकस्मात् ही नौकर सामने आता हुआ दिखाई दिया। दैवयोग से उस मास में गर्भस्थिति हो जाने से जो लड़का पैदा हुआ वह उस नौकर की तरह काले रंग का था।

दूसरा दृष्टान्त—एक बार एक सज्जन के यहाँ उसकी साली अपनी बहन को मिलने के लिए आई। बहन को ऋतुधर्म का चौथा दिन था, वह स्नान कर रही थी, उसे पता लगा कि मेरी बहन आई हुई है। वह जल्दी से स्नान कर के उसे मिलने को गई। उसकी बहन का एक छोटा बच्चा था। उसने उस छोटे बच्चे को गोद में उठा लिया और प्यार किया। प्रभाव यह हुआ कि उसे बच्चे की शक्ल व सूरत उसके हृदय में जम आई। दैवयोग से उसी मास में ही गर्भस्थिति भी हो

गई। जो बच्चा पैदा हुआ वह शक्ल व सूरत में वैसा ही था, जैसा उसकी बहन का।

तीसरा दृष्टान्त—एक गर्भवती स्त्री ने बाज़ार से एक सुन्दर बालक का चित्र खरीदा और बैठक में टाँग दिया। प्रतिदिन उसकी दृष्टि उस चित्र पर पड़ा करती थी। जब बच्चा पैदा हुआ तो उसकी आकृति का था, क्योंकि उस चित्र का प्रभाव उसके मन पर हर समय रहता था।

चतुर्थ दृष्टान्त—एक मालिक मकान ने अपने मकान का एक भाग किराये पर दे रखा था। किरायेदार की स्त्री की आँख कुछ विकृत थी। मालकिन और किरायेदार की स्त्री में परस्पर मैत्री थी। दैवयोग से मालिक मकान की स्त्री को गर्भाधान के समय उसकी सूरत का ख्याल हुआ। उस गर्भ से जो बच्चा पैदा हुआ, वह भी विकृत आंखों वाला ही उत्पन्न हुआ।

पांचवां दृष्टान्त—एक मनुष्य ने अपने घर में बन्दर पाल रखा था। उसकी स्त्री जब स्नान कर चुकी तो दैवयोग से उसके सामने वह बन्दर आया जिसका प्रतिबिम्ब उस स्त्री के मन पर बैठ गया और संयोगवश उसी मास में उसको गर्भ ठहर गया। उससे जो सन्तान

उत्पन्न हुई वह बन्दर की शक्ल की थी। इस प्रकार अन्य भी बहुत से दृष्टान्त हैं।

छटा दृष्टान्त—प्रायः अधिकतर ऐसा देखने तथा सुनने में आया है कि अमीर घरानों की स्त्रियाँ जब उन का प्रसव काल आता है तो वह अपने प्रसव के लिये किसी ऐसे अस्पताल में प्रविष्ट हो जाती हैं जहाँ कि उन का प्रसव सुखपूर्वक हो सके।

इसी लक्ष्य को रखकर हमारे एक मित्र की धर्मपत्नी ने भी जब उसका प्रसव समय निकट आया तो वह भी अपने प्रसव के लिये अस्पताल में प्रविष्ट हो गई।

संयोग से कहिये या भाग्यवश उस स्त्री की जो भी प्रसव के लिये दाया मिली वह बड़ी ही हंसमुख, मधुवक्ता तथा प्रिय भाषिणी थी। अतः उस दाया की सहायता से जो बालक उत्पन्न हुआ तो सबसे प्रथम स्वभाववश उस बच्चे के नेत्रों की ज्योति उस हँसमुख दाया के चेहरे पर पड़ी। जिसका प्रतिबिम्ब (फोटो) की भांति क्षणभर में नवजात शिशु के हृदय पर अंकित हो गया।

जिसका परिणाम यह निकला कि वह बालक जो आज इस समय ग्यारह वर्ष की आयु का हो चुका है वह जो कुछ भी किसी से वार्तालाप करता है बड़े ही मीठे

और सरल शब्दों द्वारा हँसता हुआ करता है। मानो उसको प्रकृति देवी ने उदासीनता, क्रोध और अहंकार दिया ही नहीं।

सातवां दृष्टान्त—यह बात शास्त्र सिद्ध और मानी हुई है कि इस विस्तृत संसार का निर्माण पाँच तत्वों और तीन गुणों के आधार पर ही हुआ है। इसलिये जितने भी जीवधारी हैं वह सबके सब अपने अपने खान पान आचार विचार और बुद्धि द्वारा अपने अच्छे बुरे मार्ग का निर्माण कर रहे हैं।

परन्तु आज के संसार में ऐसे प्राणी बहुत ही कम मात्रा में पाये जाते हैं जो कि अपने जीवन का निर्माण सतोगुणी, आहार विहार, उत्तम संगत, स्वाध्याय, सेवा और पर उपकारादि से कर रहे हों चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

परन्तु जिन विचारशील सज्जनों ने उत्तम शास्त्रों का कुछ अध्ययन किया है वह अवश्य ही कुछ न कुछ अपने अनमोल मानव जीवन को ईश्वरादेशित पवित्र मार्ग में लगाते हुए दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

दृष्टान्त रूप में एक पवित्रात्मा देवी कि जिसने अपने बचपन से ही अपने को उत्तम विचारों की साधना

में ईश्वर की दया से साधा है। जिसके परिणाम स्वरूप वह अब भी उत्तम शास्त्रोक्त ग्रन्थों के स्वाध्याय में अपने मानव जीवन को बिता रही है।

जिसका आज उत्तम फल यह निकल रहा है कि उसकी छातियों में उसके बच्चों के लिये जिस भी दूध का निर्माण होता है वह बहुत ही पवित्र और भक्ति रस के रस से भरा होता है।

जिससे उसके घर में जितने भी उसके बच्चे विद्यमान हैं वह सब के सब स्वाध्याय से प्रेम करने वाले तथा ईश्वर विश्वासी और भक्त हैं। इसलिये धर्मशास्त्रों ने केवल माता को केवल माता ही नहीं कहा प्रत्युत सन्तान की निर्माता अर्थात् उसके तन मन और जीवन का निर्माण करने वाली कहा है।

माता शब्द को शास्त्रों ने प्रथम स्थान क्यों दिया है

अपनी प्राणप्रिय सन्तान को जैसा भी वह चाहे ठीक वैसा का वैसा अपने गर्भरूपी साचे में ढाल सकती है इस से माता को सब शास्त्रों ने सबसे प्रथम आदर का स्थान दिया है। देखिये परमात्मा के लिये भी सब से प्रथम

'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' का ही प्रयोग किया गया है और उसके बाद पिता का अर्थात् मातृत्व को ह। प्रथम स्थान दिया है। ऐसे ही सीताराम, राधे कृष्ण, तथा राधे श्याम आदि शब्दों के प्रयोग में भी स्पष्ट आता है। इसी प्रकार आगे चल कर हमारी माताओं ने जैसी २ वीर योधा तथा भक्त सन्तान उत्पन्न की है उन दृष्टान्तों से माता की महिमा का आप लोगों को और भी अधिक महत्व बतलाने का यत्न करूँगा।

इन उपरोक्त अनुभवों में आये हुए सातों प्रकार के जीवित जागृत दृष्टान्तों से स्पष्ट सिद्ध है कि हमारे धर्म शास्त्र और आयुर्वेद के ग्रन्थ जो कुछ भी हमें बतला रहे हैं वह सब का सब सत्य और न्याय संगत है।

इसलिये ऋतु स्नान कर चुकने के उपरान्त स्त्री को चाहिये कि वह सावधान हो कर सबसे प्रथम अपने पति देव, पुत्र अथवा धर्मात्मा ऋषि मुनियों के चित्रों का दर्शन कर लेना अपना परम कर्तव्य समझे इसी प्रकार सन्तान पर अच्छा बुरा प्रभाव डालने वाले समयों की गणना बतलाई है उनका भी ध्यान रखती रहे।

उपरोक्त न्याय नियमों के आधार पर ही प्रायः यूरोप आदि देशों में माता पिता अपनी सन्तानों को उत्तम

से उत्तम बनाने के लिये शास्त्रोक्त विधि को अपना कर्तव्य समझकर जैसी भी वह गुण कर्म, स्वभाव वा रङ्ग रूप वाली सन्तान चाहते हैं वह गर्भाधान के दिन से लेकर शिशु के दुग्धपान करने के समय तक अपने आचार विचार, खान पान, रहन सहन, स्वास्थ और रङ्ग रूप को ठीक वैसा का वैसा ही रखती हैं जैसा कि एक पवित्र निरोग, सदाचारी, बुद्धिमान और धर्मात्मा पुरुषों में गुण होने चाहिये।

इसलिये उनके घर में जो भी सन्तान आती है वह सुन्दर सुडौल, देश भक्त, बलवान, निरोग, स्वजाति प्रेम से परिपूर्ण तथा अपने को नियमानुसार सब कार्य करने वाली ही आती है।

वह लोग इस बात को भली प्रकार से जानते हैं कि बच्चे का जो कुछ भी निर्माण है वह सब हमारे अपने कर्माकर्म, खान पान और आचार विचार पर ही निर्भर है। नव शिशु अपनी माता के गर्भ से ही संस्कार लेकर आता है इसलिये वह गर्भ में प्राप्त किये संस्कार बालक में अपने आजीवन रहने वाले होते हैं।

परन्तु बड़े शोक से लिखना पड़ता है कि हमारे भारतीय नर नारी उपरोक्त बातों को जानते हुये भी अपने

बच्चों को उत्तम बनाने में तनिक भी ध्यान नहीं देते। कुछ अवहेलना सी कर जाते हैं जिससे हम लोग अपनी सन्तान को उत्तम बनाने में दिन प्रतिदिन पीछे होते जा रहे हैं।

माता पिता की कुछ भूल

याद रहे कि जो माता पिता अपने बच्चों को शिक्षा प्राप्त कराने के लिये केवल स्कूलों में ही प्रविष्ट कर उनको अच्छे आचार विचार पण्डित अथवा भक्त बनाना चाहते हैं वह कुछ भूल पर हैं। मैं यह नहीं कहता कि बच्चों को शिक्षा प्राप्ति के लिये स्कूलों में बिलकुल ही नहीं भेजना चाहिये प्रत्युत मेरा तात्पर्य यह है कि प्राकृतिक कार्यों की शिक्षा तो मनुष्य को बाहर के विद्यालयों से ही प्राप्त करने पर लाभ होगा। परन्तु आचार विचार की पवित्रता, भक्ति और धर्म से प्रेम, और अपने चरित्र के निर्माण की शिक्षा तो बच्चे को माता अपने गर्भ में ही अपने कार्य व्यवहार और अपने पवित्र विचारों, सत्संग, और स्वाध्याय के द्वारा ही जिस उत्तम विधि से दे सकती है उतना बाहर आकर नहीं क्योंकि जो शिक्षा एकान्त में, शान्तावस्था में और अपना लक्ष्य समझ कर दी जाती है

वह चिरस्थायी अथवा जीवन भर संगी होती है। शास्त्रों के कथनानुसार भी बच्चे के चरित्र निर्माण का इससे बढ़ कर और कोई साधन नहीं।

मनचाही सन्तान हित शास्त्रों का आदेश

उत्तम और मनचाही सन्तान पैदा करने के लिये तो हमारे अनुभवी ऋषिमुनियों, पाश्चात्य विद्वानों, आयुर्वेद शास्त्रों तथा वैद्य समाज का कहना है कि हे नर-नारियो ! यदि तुम अच्छी से अच्छी सन्तान चाहते हो तो स्वपति रमण के समय किसी सुन्दर, स्वस्थ, निरोग विद्वान अथवा सन्त महात्माओं का चित्र अपने कमरे में ठीक ऐसे स्थान पर लगाओ या उनके उपदेशों को लटका दो कि जहाँ पर तुम्हारी धर्मपत्नी की आँखों का तारा ठीक उस पर अपनी ज्योति (प्रकाश) डाल सके ताकि उस वक्त उसके मानसिक विचार भोग वासना के विचारों से हट कर उधर आकर्षित हो जायें और उनके विचारों का प्रतिबिम्ब उसके हृदय पर उस समय फोटो की भाँति अंकित हो जाय। जिससे कि उस दिन के गर्भ रहने से जो भी तुम्हारे घर सन्तान आये वह तुम्हारे पवित्र विचारों वाली ही आये।

गर्भाधान के लिये मौसम, मास, दिन, समय तथा स्थानादि का विचार

यह वात मानी हुई है कि जिस कार्य के करने का जो समय निश्चित हुआ है या किया गया है तो वह कार्य उसी समय में ही करने से सिद्धि अर्थात् अपने फल को प्राप्त होता है।

जैसे किसान अपनी खेती में अथवा वाग का माली अपनी वाटिका में जिस भी अनाज या फल फूल के वोने का समय आता है उसी समय उसके वीज को वोने के लिये अपने खेत में डालता है।

अथवा वृक्षादि भी समय आने पर ही फलते और फूलते हैं इसी प्रकार हमारे खाने, पीने, सोने, जागने आदि का जो भी निश्चित समय होता है वह हमें अपने मुक्त कंठ से चेतावनी देते हैं।

यदि हम उनकी दी हुई चेतावनी को ठीक उसी समय पर पूर्ण कर देते हैं तो निश्चय ही हम अपने स्वास्थ रूपी फल को प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं। और यदि किसी भी कारणवश हम उनको समय पर न करके अनिश्चित समय पर करते हैं तो हमारा रोगी हो जाना अवश्यम्भावी है अर्थात् फिर हम अपने स्वास्थ रूपी फल को प्राप्त नहीं कर सकेंगे ऐसा प्राकृतिक नियम संसार में सर्व स्थानों में कार्य कर रहा है।

इसलिये हमको चाहिये कि हम जो भी कार्य करें उसके समय तथा लाभालाभ का पूर्णतया विचार करके ही करें। तभी हम अपनी मन वांच्छित भावना को पूर्ण कर सकेंगे। इसलिये शास्त्र कहता है कि—

समय की महिमा

मान समय का जो करें, समय उसे दे मान।
देते इसे विसार जो, वही उठावें हान ॥१॥

इस कारण करते रहो, सदा समय का मान।
ऋद्धि सिद्धि इससे मिले, और मिलें भगवान ॥२॥

देखो

बोये जाते वक्त पर, जो अनाज फल फूल।
लाते हैं वह मधुर रस, निज स्वभाव अनुकूल ॥३॥
ऐसे ही जब आप भी, पूर्ण समय अनुसार।
करेंगे गर्भाधान तो, सन्तति हो सुखकार ॥४॥
जिसे न लाभालाभ का, अपना कुछ भी ध्यान।
समय भी जाता सोय तब, लम्बी चादर तान ॥५॥

ठीक यही अवस्था उत्तम सन्तान के लिये भी परम पिता परमात्मा ने हमारे कल्याण के लिये निश्चित कर दी है इसलिये हमें आवश्यक है कि उत्तम सन्तति प्राप्ति के हेतु शास्त्रादेशित नियमानुसार गर्भाधान रूपी पवित्र क्रिया के करने से पूर्व उसके मौसम (ऋतु) मास, दिन, समय तथा अच्छे बुरे स्थानादि का विचार करके ही गर्भाधान करें जिससे हमें यथेष्ठ लाभ की प्राप्ति हो सके।

गर्भाधान के लिये सबसे प्रथम उपयोगी मौसम

भूमि, बीज, ऋतु, खाद और उत्तम जल से ही उत्तम खेती का होना निश्चय है। यदि इनमें से एक भी ठीक न

हो तो खेती का उत्तम होना असम्भव हो जाता है चाहे वह कितनी भी उत्तम से उत्तम कमाई हुई भूमि क्यों न हो। यदि उसमें समय का विचार नहीं किया गया तो उसमें डाला बीज निष्फल हो जाता है।

इसी प्रकार सन्तान रूपी उत्तम फल प्राप्त करने के लिये भी जहाँ रज और वीर्य की शुद्धि का हमें ध्यान रखना है वहाँ पर साथ साथ समय का भी अर्थात् ऋतुकाल का भी हमें ध्यान अवश्य रखना पड़ेगा तभी हम अपनी मनोकामना में सफल हो सकेंगे। वह समय है ऋतुधर्म की १६ रात्रियों में से चुना हुआ दिन।

गर्भाधान के लिये मासों की श्रेष्ठता

ठन्डे देशों में आषाढ़ तथा श्रावण मास गर्भाधान के लिये शास्त्रों तथा अनुभवी वैद्यों ने उत्तम वर्णन किये हैं क्योंकि इन मासों में स्थित हुए गर्भ का वसन्त ऋतु में जन्म होता है। इस ऋतु में जिस तरह सृष्टि आनन्दित रहती है शिशु भी इसी प्रकार आनन्दित रहता है।

इस समय निर्मल आकाश, नवीन वनस्पतियाँ, और सुन्दर खिले हुए फूल सृष्टि के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। इस

सुन्दरता का प्रभाव बच्चे पर भी पड़े बिना नहीं रहता, जिससे वह रोग रहित, बलवान और तेजयुक्त होता है।

इसी प्रकार उष्ण देशों में वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष तथा पौष मास गर्भ धारण के लिये अनुभवी महानुभावों ने उत्तम से उत्तम वर्णन किये हैं। क्योंकि प्रथम के दो मासों में रहे गर्भ का पौष तथा माघ मास में प्रसव होता है। अतः उस समय बालक को वसन्त की बहार मिलती है।

पौष तथा मार्घशीर्ष मास में लोग पुष्टिकारक पदार्थों का विशेष प्रयोग करते हैं इसलिये उनमें विशेष बल बढ़ा हुआ होता है, याद रहे कि उस समय के गर्भ से सन्तान भी बलयुक्त होती है तथा शरद ऋतु में उत्पन्न होने के कारण तेजोयुक्त होती है।

शरद ऋतु में सृष्टि का सौन्दर्य पूर्ण रूप से खिला हुआ होता है। निर्मल आकाश तथा निर्मल जल से पूर्ण नदियाँ शोभा को बढ़ाती हैं और वृक्षादि भी अपनी जवानी में मस्त होते हैं।

जो विचारवान नर नारी उपरोक्त कहे हुए अनुभव किये हुए तथा लाभदायक मासों में गर्भाधान करते हैं

वह किसी भी प्रकार का धोखा न खा कर निम्न गुणों से युक्त सन्तान को प्राप्त करते हैं।

ज्ञानी हो चिरंजीवि हो, सरल भाव का स्रोत।
तेज ओज धन धान से, होवे ओत प्रोत॥
सुन्दर शोभा युक्त हो, और बहु गुणवान।
आये ऐसी सन्तति, गुणि जन करें वखान॥

गर्भाधान के लिए त्याज्य दिन

जिस भाँति गर्भाधान के लिये समय और मासों का विचार करना आवश्यक है। इसी प्रकार उत्तम सन्ताना-भिलाषियों को उचित अनुचित दिनों को भी विचार करके ही गर्भाधान करना चाहिये।

(१) दोनों पक्षों की द्वितीया, षष्ठी, नवमी और चतुर्दशी।

(२) पर्वतिथि-अष्टमी, अमावस्या, पूर्णमासी और संक्रान्ति।

(३) रजोधर्म की प्रथम छः रात्रियाँ।

(४) सन्धि—दिन के दोनों समयों तथा ऋतुओं के परिवर्तन में।

(५) वार—मंगलवार, शनिवार को गर्भाधान नहीं

करना चाहिये, क्योंकि प्रथम तो गर्भ रहता ही नहीं, यदि रह भी जावे तो नष्ट हो जाता है।

(६) निम्नलिखित नक्षत्रों से भी बचना अति आवश्यक है :—

कोक कहे जो तुम चहो, रोग रहित सन्तान।
त्यागन में नक्षत्र दश, रक्खो सर्वदा ध्यान॥
ज्येष्ठा, मघा मूला अरु, तीन उतरा संग।
अश्वनी कृतका, रेवती, करें कार्य को भंग॥
निन्दित पाँचों पर्व भी, करके जोगन त्याग।
करते गर्भाधान हैं, उनके जागें भाग॥
कोकाज्ञा विपरीत जो, करते हैं संभोग।
चिन्ता, भय, दुख क्लेश के, खुद उपजावें रोग॥

जो स्त्री या पुरुष उपरोक्त, नक्षत्रों, तिथियों, वार तथा सन्धियों से बच कर गर्भाधान करते हैं वह और उनकी सन्तानें स्वर्ग के समान सुख को भोगती हैं। इन सबके गुणावगुणों का विस्तृत वर्णन आगे विस्तारपूर्वक किया जायेगा।

गर्भाधान के लिये उचित दिन

याद रहे कि निम्नलिखित नक्षत्रों, वारों और

तिथियों में किया गर्भाधान अति लाभदायक होता है। ऐसा शास्त्रों में पाया गया है।

(१) नक्षत्र—श्रवण, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, स्वाति, षतभिष उतरापाढ़ा, उतरा भाद्रपदा, उतरा फालगुनी तथा पुष्य।

(२) तिथि—प्रथमा, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी तथा द्वादशी तिथियाँ अति उत्तम हैं।

(३) ऋतुधर्म की रात्रियाँ—सातवीं, आठवीं, नौवीं, दशवीं, वारहवीं, चौदहवीं, पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं एक दूसरे से उत्तरोत्तर शास्त्रों ने प्रशस्त कही है।

(४) वार—सोमवार, बुद्धवार, बृहस्पतिवार तथा शुक्रवार आदि वारों में पं० कोक ने उत्तम वार कहे हैं। अब पहिले गर्भाधान की गुण अवगुण जो तिथियाँ हैं उनका वर्णन किया जाता है जिससे गर्भाधान के दिन आप निषिद्ध रात्रियों तथा तिथियों से बचकर सुन्दर तथा निरोग सन्तान हित गर्भाधान कर सकें।

गर्भाधान हित पर्वों की छः निषिद्ध तिथियाँ

भूगोल विज्ञान तथा ज्योतिष शास्त्र के जानने वाले विद्वान् इस बात को प्रमाण रूप से सिद्ध कर चुके हैं तथा

गृह्य सूत्रों में भी इस बात को पुष्ट किया गया है कि चन्द्रमा और सूर्य दोनों महान नक्षत्र पृथ्वी की समस्त वस्तुओं के साथ अपने अपने स्थान पर एक विशेष सम्बन्ध रखते हैं।

जहाँ पर सूर्य भगवान अपने तेज, ज्योति और बल का प्रभाव भू मण्डल के हर एक पदार्थ में डालते हैं वहाँ पर चन्द्रमा का सम्बन्ध भी पृथ्वी भर के जलीय अंशों के साथ विशेष रूप से पाया जाता है। अतः यहाँ पर सूर्य के प्रभाव का विचार छोड़कर केवल चन्द्रमा के प्रभाव का ही वर्णन कर देना अति आवश्यक समझता हूँ क्योंकि इस पुस्तक का जो प्रकरण है उसका सम्बन्ध चन्द्रमा के साथ विशेष रूप से है।

सूर्य तथा चन्द्रमा के प्रभावशाली कार्यों और प्रभावों को वही ज्ञानी और विज्ञान-वेत्ता समझ सकते हैं जिन्होंने कि भौतिक विद्याओं के शास्त्रों का भली प्रकार से अध्ययन किया है अथवा जिनका निवास प्रायः समुद्री तटों पर रहता है।

वह सदा अपने नेत्रों से इस प्राकृतिक बात को देखते रहते हैं कि पूर्णमासी की रात्रि को समुद्र में ज्वार भाटा किस प्रकार से अपना उग्र रूप धारण कर तथा चञ्चल

गति के साथ अपने उभार को आग पर रखे हुए दूध के उभार के समान उभारता हुआ आता है। और —

उसके विपरीत दोनों पक्षों की अष्टमियों को किस उदासीन भाव से अपनी तीव्र गति का त्याग कर समान भाव अर्थात् समता रूप में बहने लगता है। मानो जैसे कि इसके किसी प्रधानाचार्य ने इसकी द्रुत गति पर एक-दम समान रूप से चलने के लिये अपनी आज्ञा जारी कर दी हो। तथा—

अमावस्या को जब कि चन्द्रमा का प्रभाव अति क्षीण सा रह जाता है तब यह भी अपनी गति को धीरे धीरे अति मन्दावस्था को प्राप्त हो नाच करने वालों की भाँति नृत्य करता हुआ प्रत्यक्ष देखने में आता है।

हमारे आर्य भाई तथा बहिनें इस बात को भली प्रकार से जानती हैं कि चन्द्रमा रसोत्पादक है। इसलिये इसका प्रभाव उन स्थानों पर अवश्यमेव होता है जिन स्थानों पर कुछ भी जलीय अंश अपना काम कर रहा है।

इसलिये इसका आकर्षणरूपी प्रभाव केवल समुद्र में ही नहीं पड़ता प्रत्युत पृथ्वी भर की समस्त उन वस्तुओं पर भी पड़ता है जिनमे जलीय अंश विद्यमान है जैसे

नदियाँ, वृक्ष, फल फूल, शाक तथा समस्त जीवधारी, पशु पक्षी, कीट पतंग और मनुष्य मात्र के रक्त और वीर्यादि में चन्द्रमा के बलाबल के अनुसार उतराव वा चढ़ाव का प्रभाव अवश्यमेव पड़ता है। अर्थात्—

पूर्णमासी के दिन सम्पूर्ण प्राणी मात्र के रक्तादि सातों की सातों धातुओं में समुद्र के ज्वार भाटा की भांति, चन्द्रमा उभार लाकर फिर दोनों पक्षों की अष्टमियों को कुछ निर्बलावस्था को प्राप्त हो अन्त में अमावस्या को अति मन्द गति में आ जाता है अर्थात् शरीर के सम्पूर्ण रसों को कम कर देता है इसलिये इस दिन प्रत्येक प्राणी मात्र का स्वास्थ कुछ क्षीण पड़ जाता है। विचारवान नर नारियों ने इस बात को पूर्ण रूप से अनुभव भी किया है।

जिस प्रकार गर्मियों से शीतकाल और शीतकाल से गर्मी की ऋतुसन्धि के समय आयुर्वेद मतानुसार शरीर में रक्त विषम अवस्था में रहता है। जिसके कारण ज्वर कब्जी, मन्दाग्नि, अंगों का टूटना इत्यादि रोग हो जाते हैं इसी प्रकार पूर्णमासी, अमावस्या और दोनो अष्टमियों को रक्त में विषमता रहती है।

इसी सिद्धान्तानुसार आयुर्वेद शास्त्र में भी वनस्पतियों के संग्रह करने का समय शीतकाल अर्थात् जब

चन्द्रमा पूर्णरूप से बलवान हो निश्चित किया है। क्योंकि उष्णकाल में धूप की गर्मी के कारण जब कि वनस्पतियों का जलीय अंश शुष्क हो जाता है तब उस काल में उन्हें उखाड़ना निषेध किया गया है। कारण कि इस समय वनस्पतियां अपने गुण वा स्वभाव से सर्वथा रहित होती हैं।

रजवीर्य पर चन्द्रमा के प्रभाव का कारण

गर्भ धारण करने के लिये भी जिन दो अनमोल पदार्थों की आवश्यकता होती है वह रज और वीर्य दोनों भी जलीय अंशों से निर्मित हैं, इसलिये इन पर भी अन्य रस रक्तादि की भाँति चन्द्रमा का प्रभाव पूर्णमासी को चढ़ाव और अमावस्या में उतराव की ओर स्वाभाविक होता है।

जिस प्रकार पूर्णमासी, अमावस्या तथा दोनों पक्षों की अष्टमियाँ जो यह चार प्रसिद्ध पर्व हैं इनके अतिरिक्त दोनों पक्षों की चतुर्दशियां भी अर्थात् एक पूर्णमासी के दिन से पूर्व का दिन और दूसरा अमावस्या से पूर्व का दिन हमारे आर्य भाई, ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाता, मनुस्मृति तथा आयुर्वेद के बड़े ग्रन्थ पुरातन काल से आज तक

पर्वतिथियाँ मानते चले आ रहे हैं। कारण कि शुक्ल चतुर्दशी में पूर्णिमा का सा और कृष्ण चतुर्दशी में अमावस्या का सा प्रभाव पाया जाता है। ऐसा सबका निश्चित मत है।

क्योंकि दोनों ही चतुर्दशियाँ अमावस्या और पूर्णिमा के अन्तर्गत रहती हैं इसलिये पूर्णमासी के दिन का उभार और अमावस्या में उत्तराव का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्यमेव पाया जाता है।

वेदादि शास्त्रों में पर्व रात्रि को आश्चर्यमय रात्रि क्यों कहा है ?

वेदों तथा मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में पर्वरात्रि को एक आश्चर्यमय रात्रि अर्थात् चित्र रात्रि से पुकारा गया है। इसलिये वेद हमें स्पष्ट रूप से शिक्षा दे रहा है कि हे नर नारियो! जब भी तुम निरोग, स्वस्थ और उत्तम सन्तान हित गर्भाधान करने की भावना अपने मन में धारण करो तो उपरोक्त कही हुई आश्चर्यमयी रात्रियों का अवश्यमेव ध्यान रख कर ही संभोग करो। इससे तभी तुम उत्तम, सुन्दर, चिरंजीवी और निरोग सन्तान प्राप्त करने के अधिकारी बन सकोगे।

वर्णन की हैं वेद में, आश्चर्यमयी जो रात।
उन पर देकर ध्यान तुम, सुनो जरा कुछ बात॥
षट रात्रि जो पर्व की, कहे शास्त्र ने पर्व।
करना उनमें भोग का, जानो बड़ा अधर्म॥
इस हेतू कभी भूल कर, करो न तुम संभोग।
लाती हैं ये देहि में, निज स्वभाव से रोग॥
व्याकुलता चिन्ता बढ़े, देह निर्बल हो जाय।
नाना रक्त दोष से, सन्तति भी दुख पाय।

साथ २ में हमारे धर्म और स्वास्थ रक्षा की शिक्षा देने वाले शास्त्रों ने यह भी बतलाया है कि जो जन इन छः निषिद्ध पर्व तिथियों में गर्भाधान करते हैं यदि उस संयोगवश गर्भ रह जाता है तो आने वाली सन्तान में जहाँ देह में फोड़े फुन्सी, दाद उत्पन्न करने वाले रक्तादि दोष निश्चय रूप से विद्यमान होंगे वहाँ पर साथ २ में सन्तान, दुर्बलेन्द्रिय अल्पायु और आलसी होगी।

जिन मनुष्यों में रक्त विकार विशेष रूप से पाया जाता है उनका यही एक प्रधान कारण है कि उनके माता पिता ने शास्त्रोक्त निषिद्ध तिथियों में समागम किया है। तथा साथ २ मे आयुर्वेद यह भी कहता है कि यदि आपने उपरोक्त बात पर ध्यान न दिया तो—

फिर अपनी सन्तान हित, लाखों करो उपाय ।
कंडू खुजली, दाद से, जीवन भर दुख पाय ॥

इसके अतिरिक्त दोनों स्त्री पुरुषों की इस समय के संभोग से पाचन शक्ति भी अति निर्बल हो जाती है जिससे स्वास्थ बिगड़ने की पूर्ण आशंका रहती है ।

इसलिये विचारवान नर नारियों को चाहिये कि वह सदा ही इन रात्रियों का त्याग रक्खें क्योंकि जहाँ हमारे धर्मशास्त्रों में इन दिनों में समागम करना पाप माना है वहाँ पर स्वास्थ रक्षा का विचार रखते हुए इन तिथियों में पाठशाला में पठन पाठन करने का भी पूर्ण विरोध किया है ।

यदि हमारे राज्याधिकारी ऋषियों की इस पुरातन परम पवित्र और स्वास्थवर्धक प्रणाली को प्रयोग में लाकर रविवार की छुट्टियों की अपेक्षा पूर्णमासी, अमावस्या और दोनो पक्षों की अष्टमियों में पठन पाठन और कार्यालयों का अवकाश रक्खे तो हमारे देश और जाति के स्वास्थ की बहुत ही अधिक उन्नति हो सकती है ।

जैसे वनस्पतियों में सौम्यगुण तथा जलीय अंश शीतकाल में जबकि चन्द्रमा बलवान होता है तो विशेष-

रूप से होते हैं यही अवस्था सम्पूर्ण प्राणीमात्र जगत की शास्त्रों ने वर्णन की है।

अब बलवान, मध्यबल तथा क्षीणबल होने की जो तिथियाँ शास्त्रों में आई हैं वह निम्नलिखित हैं।

शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर कृष्ण पक्ष की पंचमी तक वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार अति प्रबल हुआ करता है और कृष्ण पक्ष की षष्ठी से दशमी तक तथा शुक्ल पक्ष की षष्ठी से दशमी तक मध्यबाला होता है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की एकादशी से शुक्ल पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा क्षीण बल में रहता है।

इसीलिये आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र हमें सावधान कर रहे हैं कि हे मनुष्यो ! बलवान चन्द्रमा के दिनों में जो भी कार्य किसी पवित्र कार्य को लक्ष में रखकर किया जाता है वह कार्य अपने पूर्ण फल को प्राप्त हुआ करता है। इसी प्रकार जो कार्य मध्यबल के चन्द्रमा के दिनों में किया जाता है याद रहे कि उसका फल भी मनुष्य को मध्यम रूप में मिलता है तथा क्षीणबल चन्द्रमा के काल में किये गए कार्य का फल धर्मशास्त्रानुसार मनुष्य को अत्यल्प होता है।

इसलिये यदि हम चाहते हैं कि हमारा किया गया

शुभ कर्म पूर्ण फल को प्राप्त हो तो हमें चाहिये कि हम जो भी शुभ कार्य करें उसमें बलवान चन्द्रमा का विचार करके ही करने का यत्न करें।

इसी लक्ष्य को रखकर हमारे ऋषियों ने शुभ संस्कारों के करने में बलवान चन्द्रमा के दिनों पर ही विशेष बल दिया है।

पाता है जब चन्द्रमा, पूरण बल का योग।
किया गया उस काल में, प्रेम सहित संभोग॥
लाता है वह सन्तति, दीर्घ जीवी गुणवान।
शील भाव सुन्दर सदा, जग भर में यशवान॥
हृष्ट पुष्ट सब अंग हो, देही भी बलवान।
इन्द्रियगण निर्मल रहे, चेहरा स्वर्ण समान॥
बुद्धि भी निर्मल रहे, निर्मल भाव विचार।
निर्मल मन संकल्प हो, निर्मल जग व्यवहार॥
हृदय सरल स्वभाव का, उत्साही, धनवान।
वाणी सुन्दर नम्र हो, ऐसा निश्चय मान॥

बलवान चन्द्रमा आदि का जो स्पष्ट रूप से नक्शा है उसको दिया जा रहा है जिससे कि आप उसको बड़ी सरलता से जानकर लाभ उठा सकेंगे।

चन्द्रमा का बलाबल

शुक्लपक्ष			कृष्णपक्ष		
सं०	तिथियाँ	चन्द्रमा का बल	सं०	तिथियाँ	चन्द्रमा का बल
१	प्रथमा	क्षीणबल	१	प्रथमा	पूर्णबल
२	द्वितीया	,,	२	द्वितीया	,,
३	तृतीया	,,	३	तृतीया	,,
४	चतुर्थी	,,	४	चतुर्थी	,,
५	पंचमी	,,	५	पंचमी	,,
६	षष्ठी	मध्यबल	६	षष्ठी	मध्यबल
७	सप्तमी	,,	७	सप्तमी	,,
८	अष्टमी	,,	८	अष्टमी	,,
९	नवमी	,,	९	नवमी	,,
१०	दशमी	,,	१०	दशमी	,,
११	एकादशी	पूर्णबल	११	एकादशी	क्षीणबल
१२	द्वादशी	,,	१२	द्वादशी	,,
१३	त्रयोदशी	,,	१३	त्रयोदशी	,,
१४	चतुर्दशी	,,	१४	चतुर्दशी	,,
१५	पूर्णमासी	,,	१५	अमावस्या	,,

गर्भाधान के लिये उचित समय

वास्तव में प्रकृति नियमानुसार देखा जाय तो गर्भाधान के लिये वही समय अति उपयुक्त हो सकता है जब कि स्त्री मासिक धर्म से पूर्णरूप से शुद्ध हो चुकती है और उस शुद्धि के उपरान्त सृष्टि नियमानुसार पुरुष संसर्ग करने की स्त्री जाति में एक विशेष प्रकार की तीव्र भावना पैदा हो जाती है।

इसलिये शास्त्रों ने इसी समय को गर्भाधान का सर्व श्रेष्ठ समय बतलाया है। क्योंकि यही समय स्त्री में सन्तान उत्पत्ति की भावना उत्तेजित कर गर्भ धारण करने योग्य

बना देता है। जैसे प्रातः काल शौच शुद्धि के उपरान्त स्वभावतः ही मनुष्य का उदर कुछ न कुछ खाने का पदार्थ मांगता है। इसी प्रकार स्त्री का गर्भाशय भी जब महीने भर के संचित दूषित रक्त से शुद्ध हो जाता है तो वह भी पुरुष के वीर्य को ग्रहण करने की इच्छा रखता है। अतः स्त्री का शुद्ध तथा पवित्र रज पूरे सोलह दिन तक पुरुष के वीर्य कीटों से मिलने का उत्सुक रहता है।

परन्तु—

यह सदा याद रखना चाहिये कि जो भी गर्भाधान के लिये उपयुक्त रात्रियां शास्त्रों ने वर्णन की हैं उनमें केवल रात्रि को ९ बजे से लेकर साढ़े ग्यारह बजे तक का ही समय निश्चित किया है। इन्हीं तीन घन्टों के भीतर शास्त्र विधि अनुसार गर्भाधान करना अति लाभदायक और सुखदायक होता है।

आज कल प्रायः ८० फीसदी स्त्री पुरुष समय का विचार न करते हुए जिस समय भी इच्छा हुई समागम के लिये उद्यत हो जाते हैं। उन्हें इस बात का तनिक भी ज्ञान नहीं कि जो समय धर्म तथा वैदिक शास्त्रों में गर्भाधान के लिये निश्चित है उसमें ही गर्भाधान का कार्य करना आवश्यक है।

जैसा कि आगे भी लिख आया हूँ कि धर्मशास्त्रों में कहे हुए समय पर गर्भाधान न करने से नाना प्रकार के रोगों का जहाँ सामना करना पड़ता है वहाँ पर सन्तान भी अच्छे लक्षणों वाली पैदा नहीं होती।

भला सोचिये तो सही कि जहाँ इन ईश्वरीय और धर्मशास्त्रों का उलंघन कर अपना मनमाना कार्य करते हैं तो हमारे वीर्य रूपी बीज से निर्माण सन्तान भला हमारी आज्ञाओं का उलंघन करके अपना मनमाना कार्य क्यों न करेगी। अर्थात् जैसा हम करेंगे वह उससे कई गुना करेंगे। इसलिये उत्तम आज्ञाकारी सन्तान हित हमें चाहिये कि सदा हम धर्मशास्त्रों के अनुसार अपने कार्य व्यवहार को चलावें।

दिन के समय समागम निषेध का कारण

साथ २ में आयुर्वेद हमें यह भी उपदेश दे रहा है कि जो जन गर्भाधान का कार्य यथोचित समय पर न करके दिन के समय संभोग करते हैं। उन्हें याद रखना चाहिये कि एक तो वैसे ही गर्भाधान क्रिया से मस्तिष्क में उष्णता बढ़ जाती है तो जब दोपहर के समय पहिले

से ही सूर्य के तेज से उष्णता बहुत ही अधिक होती है तो फिर उस समय के गर्भाधान से शरीर में कितनी अधिक उष्णता और भी अधिक बढ़ जायेगी। जिसका प्रभाव शरीर पर बहुत ही बुरा पड़ता है।

उष्ण समय, दिन के समय, करें जो गर्भाधान।
दुराचारी निर्लज्ज अरु, दुर्बल हो सन्तान॥
स्वयं दुखी सिर पीड़ से, व्यर्थ वीर्य का नाश।
देही भी निर्बल बने, निज मन रहे उदास॥

इसलिये हे मित्रो! ब्रह्म मुहूर्त से लेकर रात्रि के आरम्भ होने तक सूर्य का प्रभाव विशेष रूप से रहता है। इसलिये शास्त्रों में इस समय गर्भाधान करने का निषेध किया है।

गर्भाधान के लिये शास्त्रोक्त काल

इसके उपरान्त जब कि ९ बजे से लेकर १२ बजे रात्रि तक चन्द्रमा का बल विशेष रूप से होता है इसलिये यह समय गर्भाधान के लिये शास्त्रों ने उपयुक्त समझा है। क्योंकि चन्द्रमा प्राणीमात्र में बल का देने वाला कहा गया है। इसलिये इस समय चन्द्रमा के बल की भांति

मनुष्यों में भी बल की विशेषता होती है। जिससे बल-वान सन्तान का जन्म होता है।

इसके पश्चात् का समय विश्राम के लिये छोड़ देना चाहिये। मैथुन क्रिया के पश्चात् विश्राम के आवश्यक होने से वह काल गर्भाधान के लिये निषिद्ध है। जैसा कि आगे वर्णन हो चुका है कि ऋतु परिवर्तन में रक्त विषम अवस्था में होता है, ठीक इसी प्रकार दोनों पक्षों तथा रात दिन के परिवर्तन में भी रक्त विषमता में होता है, इसलिये दोनों कालों की सन्धियों में भी गर्भाधान नहीं करना चाहिये। रक्त दूषित होने से बच्चा रोगी पैदा होगा। जैसे दिन में गर्भाधान करने से मनुष्य की आयु, बुद्धि तथा आँखों की ज्योति कम होती है। इसी प्रकार रात को भी १२ बजे के उपरान्त गर्भाधान करने से मनुष्य को अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं। इसलिये गर्भाधान का पूर्ण समय ८ से १२ बजे तक रात्रि में निश्चय किया है। यह याद रहे कि जिस दिन गर्भाधान करना हो कम से कम गर्भाधान के समय से तीन घन्टे पूर्व भोजन कर लेना अति आवश्यक है क्योंकि पेट भरे पर गर्भाधान करना कई प्रकार के रोगों का हेतु है।

गृहस्थियों को शास्त्रों का आदेश

जग भर के नर नारियो, सुनो बात दो चार ।
लाभ करो निज स्वास्थ का, हो अपना उपकार ॥१॥
भूख प्यास हो जब लगी, या भोजन पश्चात् ।
या दुख चिन्ता कर रहे, हों तुम पर आघात ॥२॥
ग्रहण समय दिन के समय, अर्द्ध रात्रि पश्चात् ।
करना गर्भाधान की, कभी न सोचो बात ॥३॥
क्योंकि इन सब काल में, किया गया आधान ।
अपने अपने दोष से, करते हैं बहु हान ॥
क्योंकि ऐसे वक्त पर, किय गये संभोग ।
चिन्ता व्याकुलता करें, और अनेकों रोग ॥
इन निन्दित पट काल में, जो करते संयोग ।
व्याधि, चिन्ता शोक के, खुद उपजाते रोग ॥
इस कारण इनसे बचो, जो चाहो कल्याण ।
सन्तति भी उत्तम मिले, मिले स्वास्थ का दान ॥
शास्त्र सभी हैं कह रहे, लाभ तुम्हारा गान ।
जीवन भी सुखरूप हो, आनन्द मिले महान ॥
बिन विचार बिन सोच के, करें जो गर्भाधान ।
व्याकुल, कुबड़ी, रोगणी, पाते हैं सन्तान ॥

१—आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि जो गृहस्थी लोग भूख प्यास की अवस्था में संभोग करते हैं उनकी सन्तति निर्बल सदा दुखदायी तथा ऐसे रोगों से पीड़ित रहती है जिसके फलस्वरूप माता पिता सदा ही चिन्तातुर रहते हैं।

२—जो नर नारी भोजन के पश्चात् अपने स्वास्थ का कुछ भी ध्यान न रखते हुए काम वासना में लिप्त हो जाते हैं याद रहे कि उनकी पाचन प्रणाली में नाना प्रकार के निर्बलता आदि दोष उत्पन्न हो जाते हैं जिससे वह स्वयं और उनकी सन्तान दोनों ही किसी न किसी उदर रोग से पीड़ित रहा करते हैं।

३—जो दम्पति क्रोध अथवा चिन्तादि अवस्थाओं में अपने को संयम सूत्र में न रख कर व्यर्थ में अपने वीर्य का नाश करते हैं वह अपने जीवन को नाना प्रकार की चिन्ताओं का घर बना लेते हैं, क्योंकि इसमें मनुष्य का तेज बल पराक्रम और बुद्धि क्षीण पड़ जाती है।

४—जो कामी स्त्री पुरुष ग्रहण के समय भी अपनी विचार बुद्धि से काम नहीं लेते उन्हें यह याद रखना चाहिये कि उनके घर जो भी सन्तान आयेगी वह किसी न किसी अंग से विकृत अवश्य होगी।

५—इसी प्रकार दिन और अर्द्ध रात्रि के पश्चात् भी जैसा कि आगे भी वतलाया जा चुका है कि जो संभोग करते हैं वह दोनों ही दम्पत्ति सिर पीड़ा और देह से विशेष निर्वल रहते हैं। ऐसा आयुर्वेद का निश्चित मत है।

इस कारण तज दीजिये, इन समयों का वास।
होना पड़े न भूल कर, तुमको कभी उदास॥
निर्दोषी सब बात से, जो चाहो सन्तान।
शास्त्र कथित सब बात का, सोच करो आधान॥

समागम के लिये निषिद्ध स्थान तथा समय

शास्त्र कहता है कि मनुष्यो! यदि तुम अपना भला चाहते हो तो गर्भाधान के लिये निम्नलिखित दश स्थानों का सर्वथा परित्याग रक्खें कारण कि इसमें धर्म, शिष्टाचार और स्वास्थ तीनों की निश्चय रूप से रक्षा होती है।

१—जहाँ कि मनुष्यों का आवागमन रहता हो।

२—जहाँ मानव समाज ने अपनी पूजा अथवा उपासना का स्थान बना रक्खा हो।

३—जिस स्थान पर वायु की गति तीक्ष्णावस्था में हो अथवा जहाँ उसका प्रवाह अति मन्द हो।

४—जो स्थान बिछौने आदि से रहित हो।

५—जो स्थान भयावह हो।

६—जो स्थान अति मलिन अथवा अन्धकार से युक्त हो।

७—जब कभी मन शोकातुर अवस्था में हो।

८—जब कभी भी मन में क्रोध की ज्वाला धधक रही हो।

९—जब शरीर किसी भी प्रकार के रोग से पीड़ित हो।

१०—जिस समय बिजली चमक रही हो या मेघ अपना शब्द कर रहे हों।

गर्भाधान के लिये शास्त्रोक्त उचित स्थान

विस्तीर्णे सजले सुधाधवलिते चित्रादिनालंकृते।
रम्य प्रोन्नतचत्वरेऽगरु महा धूपादि पुष्पान्विते॥
संगीताङ्क विराजते स्व भवने दीप प्रभाभासुरे।
निःशंकं सुरतं यथाभिलषितं कुर्यात्समं कान्तया॥

शास्त्रों तथा विचारशील सज्जनों का कहना है कि जिस भांति हम अपने मकान में पृथक पृथक कार्य के लिये यथा रसोई, बैठक, स्नान, शयन अथवा पाठ पूजा के लिये पृथक पृथक कमरे का निर्माण करते हैं ठीक इसी प्रकार

हमें उचित है कि गर्भाधान के लिये भी, जो कि एक ईश्वरीय आदेशित कार्य है, एक पृथक कमरे का प्रबन्ध रक्खें जिसमें हम निशंक हो पूर्ण प्रसन्नतापूर्वक स्वभार्या से उत्तम सन्तान हित रमण कर सकें।

जैसे पाठ पूजा एकान्त स्थान में करने से मन के विचार एक ओर लग जाते हैं और मनुष्य अपने जीवन का सुधार कर सकता है, ठीक उसी प्रकार गर्भाधान के लिए भी मन के विचारों को स्वच्छ और एक ओर लगाने के लिए भी एक प्रथक् कमरे की आवश्यकता है, ताकि आने वाली सन्तान शुभ तथा स्वच्छ विचारों वाली उत्पन्न हो।

१—जिस कमरे में गर्भाधान करना हो, वह सर्वथा स्वच्छ और चूने आदि से लिपा हुआ सुन्दर हो।

२—उस कमरे में न तो अधिक प्रकाश हो और न ही सर्वथा अंधेरा हो। मन्द मन्द प्रकाश का होना अति-आवश्यक है।

३—उस शयनागर मे अश्लील (बुरे) और अप्राकृतिक चित्र सर्वथा न हों क्योंकि उसका गर्भ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। देवताओं, ऋषि मुनियों तथा

बलवान् राजाओं के सुन्दर मनोहर चित्र टंगे होने चाहिए।

४—कमरा चित्त को प्रसन्न करने वाले पदार्थों से सुशोभित हो। जिससे चित्त पर अच्छा प्रभाव पड़े।

५—उस कमरे की छत कम से कम दस फीट ऊँची होनी चाहिये। जिससे वायु भली प्रकार आ जा सके।

६—गर्भाधान हित शयनागार में वही आवश्यक वस्तुऐं ही केवल होनी चाहिये जिनकी उस समय अति आवश्यकता पड़ती हो।

७—भवन अति मन मोहक और रमणीय हो जो नाना प्रकार के फल फूलों से सजा हुआ तथा अगरबत्ती अथवा देव धूप आदि की भीनी २ सुगन्ध से महक रहा हो। ऐसे भवन में निपङ्क होकर पति अपनी प्राण प्रिया अर्द्धांगणी भार्या से शास्त्रोक्त विधि तथा नियमानुसार गर्भाधान करे। इस प्रकार के विहार से चित्त प्रसन्न रहता है और किसी भी प्रकार की चिन्ता, भय अथवा ग्लानि नहीं होती। इस समय की स्वच्छता, सुगन्धि, निर्भयता तथा शुद्ध विचारों का प्रभाव सन्तान पर बहुत ही उत्तम और शुभ पड़ता है।

सुश्रुत के मतानुसार संभोग के अयोग्य स्त्री

रजस्वलामकामांच मलिनामप्रियां तथा ।
वर्ण वृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधि प्रपीडिताम् ।
हीनांगी, गर्भिणीं, द्वेष्यां योनिदोष समन्वितताम् ।
सन्ध्या-पर्व स्वगम्यां च नोपेयात्प्रमदी नरः ॥

महर्षि धन्वन्तरिजी लिखते हैं कि निम्नलिखित अवस्थाओं में स्त्री से कभी समागम न करे ।

१—जो स्त्री रजस्वला हो ।
२—जो काम से पीड़ित न हो ।
३—जो मैली रहने वाली हो ।
४—अप्रिय अर्थात् जो प्रिय न हो ।
५—वर्ण वृद्धा (अपने से जो वर्ण में उच्च हो ।)
६—वयोवृद्धा (जो अपने से आयु में अधिक हो ।)
७—जो रोगी अथवा दुखी अवस्था में हो ।
८—जो किसी अंग से हीन हो ।
९—गर्भिणी हो ।
१०—जिससे द्वेष हो ।
११—अपने गोत्र की हो ।
१२—जो योनिदोष मे पीड़ित हो ।

१३—जिसकी इच्छा गर्भाधान के लिये न हो।

१४—जो दिन भर के काम काज से अति थकी हुई हो। इसी प्रकार सन्ध्या के दोनों कालों तथा पर्व कालों में भी संभोग करना उचित नहीं है।

संभोग के अयोग्य पुरुष

१—जिसने बहुत भोजन किया हुआ हो या अति क्षुधातुर हो।

२—शरीर में किसी प्रकार का रोग हो।

३—जो प्यास से अति व्याकुल हो या जिसने जल अधिक पिया हुआ हो।

४—वृद्ध अथवा नपुंसक हो।

५—जो चिन्ता, शोक अथवा क्रोधादि अवस्था में हो।

६—जब पुरुष में प्रेम का संचार न हो।

७—जो अति निर्बल हो।

८—जो सुश्रुत मतानुसार आयुर्वेद में कहे हुये गाँठ-दार, दुर्गन्धित, पूय युक्त, क्षीण तथा मूत्र और पुरीष की गन्ध से युक्त शुक्र वाले संभोग के अयोग्य होते हैं अर्थात वह सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ रहते हैं।

इन अवस्थाओं में पुरुष को संभोग नहीं करना चाहिये क्योंकि उपरोक्त अवस्थाओं में संभोग करने से शुक्र (वीर्य) की हानि, आयु का नाश तथा नाना प्रकार के रोगों की उत्पत्ति होती है। तिल्ली, मूर्च्छा और शिर पीड़ा आदि रोग हो जाते हैं।

याद रहे कि जो स्त्री किसी भी काल में किसी भी शारीरिक अथवा मानसिक रोग से पीड़ित है तो उस समय पुरुष को चाहिये कि भोग भावना को बिलकुल त्याग दे। तथा इसी प्रकार यदि पुरुष भी किसी शारीरिक अथवा मानसिक रोग से व्याकुल है तो स्त्री का भी उस समय अपना धर्म और परम कर्तव्य है कि वह अपनी कामेच्छा को त्याग कर अपने को संयम में रक्खे।

आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि दोनों में से यदि कोई भी उपरोक्त कथन के विपरीत आचरण करता है तो याद रहे कि वह गृहस्थ सुखों और गृहस्थ प्रेम को ठुकराता हुआ जीवन भर किसी न किसी रोग का शिकार बना ही रहेगा और जो सन्तान भी आयेगी वह भी सदा रोगी और निर्बल बनी रहेगी।

नौवाँ अध्याय

गर्भाधान के लिये निषिद्ध अवस्थायें

१—जिस स्त्री की आयु १६ वर्ष की आयु से कम हो।

२—रजस्वला होने के दिन जब निकट हों।

३—जब स्त्री किसी रोग से पीड़ित हो।

४—जब मल अथवा मूत्र का वेग सता रहा हो।

५—जब गर्भाधान करने की मन में इच्छा न हो।

६—जब स्त्री शृंगारादि से रहित अवस्था में हो।

७—जब स्त्री मलिन वस्त्रों से युक्त हो।

८—व्यायाम आदि परिश्रम से जब थकान उत्पन्न हुई हो।

९—जंगल अथवा नदी का किनारा हो।

१०—कोई भी अनुचित स्थान हो।

११—जिस समय मन पर कुविचार अपना प्रभाव डाल रहे हों।

१२—जिन दिनों में गर्भाशय का द्वार बन्द हो।

१३—जिन दिनों में चन्द्रमा हीन वली हो।

१४—जब बच्चा माता का दूध पीता हो।

१५—वृद्धावस्था अथवा वचपन का काल हो।

१६—जब मनुष्य नशे की अवस्था में हो।

१७—स्नानादि करने के तत्काल बाद।

१८—जब निद्रा अधिक सता रही हो।

१९—दोनों दम्पतियों ने जब तेल, खटाई और मरिच आदि का अत्यधिक प्रयोग किया हुआ हो।

शास्त्र का कहना है कि स्त्री पुरुष दोनों को उचित है कि संभोग उस समय ही करें जब हर एक प्रकार के शारीरिक वा मानसिक दोषों से स्वस्थ हों अथवा केवल सन्तानोत्पत्ति की कामना ही मन में हो। व्यर्थ के भोग में अपने जीवन की हानि न करें।

ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध गर्भाधान करने से हानि

कितने दुख और शोक का विषय है कि आज-कल के नव-शिक्षित नौजवानों को ईश्वरीय नियमों के सरल और सुन्दर मार्ग का त्याग कर विपरीत मार्ग में गमन होता हुआ देख तथा सुन रहे हैं।

प्रायः स्वार्थी और कामान्ध लोग यह समझते हैं कि गर्भाधान किसी भी समय अथवा किसी भी विधि से किया जाय कोई बाधा नहीं पड़ती। क्योंकि हर एक प्रकार के संभोग से सन्तान हो सकती है। ऐसे अल्प बुद्धि जन मासिक धर्म के दिनों में, गर्भावस्था तथा रोगावस्था में भी चैन नहीं लेते।

याद रहे कि यह उनकी अल्पबुद्धि की अज्ञानता उनको एक दिन एक महान् गर्त (गढ़े) में डाल कर धकेल देती है जिससे फिर उनका इस गर्त से निकलना केवल कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव हो जाता है।

ऐसा करने से केवल उनके अपने स्वास्थ्य को ही धक्का नहीं पहुँचता प्रत्युत उसके घर में आने वाली प्राण प्रिय सन्तान पर भी इसका एक बहुत बुरा प्रभाव पड़ता

है जिसका कि यथास्थान दृष्टान्तों सहित आगे वर्णन किया जायेगा। आयुर्वेद शास्त्र का प्रसिद्ध भाव प्रकाश नामक ग्रन्थ साफ रूप से बतला रहा है कि—

रजस्वलां गतवतो नरस्या संयतात्मनः।
दृष्ट्यायुस्तेजसां हानिर धर्मश्च ततो भवेत्॥

जिसका अर्थ हमें स्पष्ट रूप से बलता रहा है कि जो रजोदर्शन के दिनों में रजस्वला स्त्री के साथ सहवास करता है उस पुरुष की दृष्टि अति मन्द पड़ जाती है, आयु और तेज में भी न्यूनता आ जाती है जिससे मुख का सौन्दर्य मिटियामेट हो जाता है तथा मनु आदि धर्म शास्त्रों के मतानुसार ऐसा कर्म अधर्म भी माना गया है। अतः विचारवान पुरुषों को चाहिये कि वह कभी स्वप्न में भी रजस्वला स्त्री का सहवास न करें।

रजोदर्शन एक प्रकार की लाल झन्डी है

इसलिये हे भाइयो! स्त्री का रजोदर्शन तुम्हारे लिये एक लाल झन्डी के समान भय सूचक है। जैसे रेल चलाने वाले ड्राइवर को लाल झन्डी आगे आने वाले खतरनाक मार्ग की भय की सूचना देती है पर ड्राइवर शराब के नशे के कारण उस लाल झन्डी की परवाह

विद्या साहस शूरता, भी न रहने पांय।
मान शान भी न रहे, गुणीजन रहे बतांय ॥५॥
जब जब नारी संग करो, करो शास्त्र अनुसार।
वृद्धि हो निज देश की, हो पूजा करतार ॥६॥

गर्भाधान के लिये शास्त्रोक्त आसन ही श्रेयकर हैं

इसी प्रकार जो स्त्रियाँ अथवा पुरुष ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध आसनों द्वारा समागम करते हैं उनमें भी नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं और सन्तान भी रोगी, कुरूप और विषयी होती है।

जैसे नाना प्रकार के कार्यों तथा शरीर को सुदृढ़ बनाने के आसनों के करने का धर्म तथा स्वास्थ शास्त्रों ने नाना प्रकार के विधान बतलाये हैं इसी प्रकार सद्सन्तान उत्पत्ति के लिये भी गृहस्थियों को ऐसे आसन या बन्ध का प्रयोग करना श्रेयश्कर है जो कि धर्म और आयुर्वेद शास्त्र के अनुकूल हों।

चरक संहिता अध्याय ८ तथा श्लोक ६ में पाठ आया है कि सन्तानोत्पति के निमित्त मनुष्य को उसी परम लाभदायक आसन या बन्ध का प्रयोग करना उचित है। जिसमें आनन्द के साथ शुक्र तथा शोणित का गर्भाशय में

यथासमय और उचित रूप मे समिश्रण हो सके तथा उत्तम, वीर, योद्धा, और भक्त सन्तान की प्राप्ति हित दीवार पर टँगे हुए वीर, योद्धा और भक्तों के चित्रों को स्त्री सहज स्वभाव से देखा जा सके। जिससे कि आने वाला शिशु ठीक वैसे भावों के अनुरूप बन सके। इसलिये आयुर्वेद कहता है कि हे देवियो ! अपने मन को इतना परम पवित्र बनाये रक्खो कि—

जिससे निर्मल भावना, पुरुष संग के काल।
आकर वारम्बार ही, चले जो सुन्दर चाल॥
जब तुमरी सन्तान के, होंगे भाव विनीत।
वाणी शुद्ध निर्मल हृदय, जो ऋषियों की रीत॥

याद रहे कि—

जैसे भाव विचार को, माता लेती धार।
बच्चा पढ़कर गर्भ में, लाता वही विचार॥

विपरीत आसनों से हानि

चरक या सुश्रुत आदि आयुर्वेद के ग्रन्थों में साफ तौर पर पाठ आया है कि स्त्री को चाहिये कि वह कभी भूल करके भी औंधी लेटकर समागम न करे। क्योंकि—

औंधी लेटकर सहवास करने से बलवान वायु कुपित

होकर योनि को पीड़ित करता है। इससे योनि और गर्भाशय की दीवारें आपस में मिल जाती हैं जिससे क्षीर सार द्रव पदार्थ नीचे की ओर बहने का स्वभाव वाला होने से समागम के समय क्षरित हुआ वीर्य या शुक्राणु अव्याहित रूप से गर्भाशय या डिम्ब प्रणाली तक नहीं पहुँच सकता।

दहिने पसवाडे करवट लेकर सहवास करने से कफ टपक कर गर्भाशय को आच्छादित कर देता है तथा बांई करवट लेटकर सहवास करने से पीड़ित हुआ पित्त अच्छे से अच्छे रज और वीर्य को दूषित कर देता है अर्थात् विदग्ध कर देता है, जला देता है जिससे गर्भस्थिति नहीं हो सकती।

यदि पुरुष नीचे और स्त्री ऊपर रह कर सहवास करते हैं तो गर्भस्थिति तो हो जाती है परन्तु यदि युग्म दिन होने के कारण लड़का पैदा होगा तो वह लड़की के आकार का और यदि उस दिन रात्रि विषम हुई तो जिस कन्या का जन्म होगा वह लड़के के लक्षणों वाली होगी। इसलिये हे गृहस्थियो!

आसन से विपरीत के, करो नहीं संभोग।
निर्लज होवे सन्तति, उपजे नाना रोग॥

आयु भी अति अल्प हो, और ज्ञान का नाश।
रोग युक्त जो सन्तति, आकर करे निवास॥

इस कारण—

आसन किया बखान जो, धर्मशास्त्र अनुसार।
उसका ही सेवन करो, मन से सदा विचार॥

इसलिये स्त्री को चाहिये कि वह सीधी उत्तान लेट कर पुरुष के त्यागित वीर्य को गर्भाशय में ग्रहण करे ऐसा होने से सम्पूर्ण दोष अपने २ स्थान पर स्थित रहते हैं तथा गर्भस्थिति भी निश्चय रूप से होती है अतः स्त्री को चाहिये कि वीर्यग्रहण के कुछ समय बाद शीतल जल से अपने नेत्र मुख तथा योनि को धो डाले।

अतः जो विचारवान गृहस्थी लोग उपरोक्त सब प्रकार के दोषों का पूर्ण रूप से ध्यान रख कर अपने जीवन को मर्यादा में रख शास्त्रोक्त नियमों के अनुसार सन्तानोत्पत्ति के लिये समागम करते हैं वही वास्तव में सन्तान के पूर्ण सुखों को प्राप्त करते हैं अर्थात् आज्ञाकारी सुयोग्य, वीर्यवान तथा सदाचारी सन्तान को प्राप्त करते हैं।

गर्भाशय की बनावट
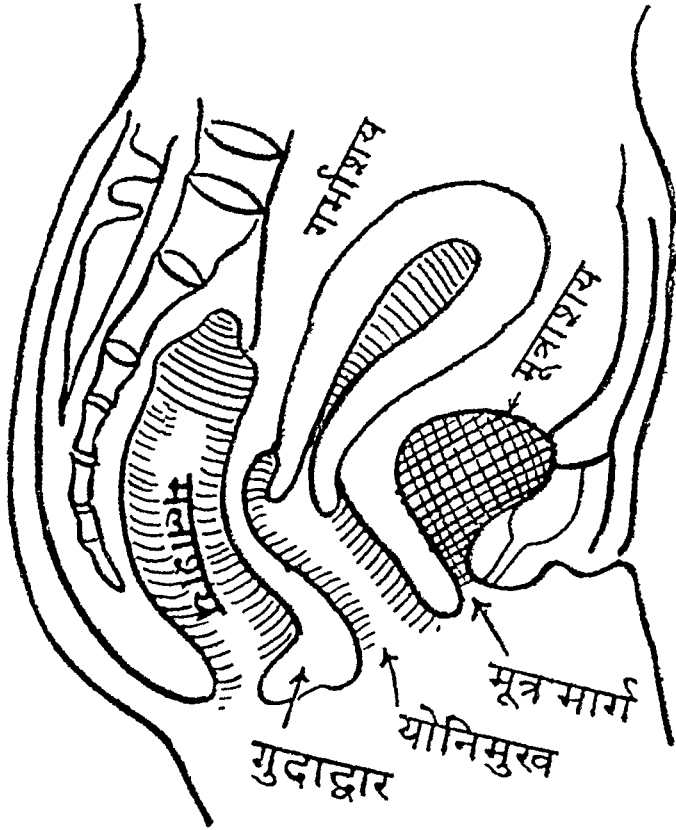
गर्भाधान-विधि कहने से पूर्व इस बात को बता देना आवश्यक है कि गर्भाशय की बनावट कैसी है।

गर्भाशय की बनावट—गर्भाशय स्त्री जाति का वह आश्चर्यमय अंग आयुर्वेद ने वर्णन किया है जिसमें कि मानव समाज के बीज की सुन्दर और सुदृढ़ नींव रक्खी

जाती है जो कि अति सुरक्षित स्थान में माता के आहार विहार से धीरे २ वृद्धि पाता हुआ एक सुन्दर आकार को प्राप्त करता है। यह गर्भाशय नाभि मूत्राशय और मलाशय के मध्य में होता है। इसके आगे मूत्राशय और पीछे मलाशय तथा ऊपर की ओर नाभि होती है। यह एक झिल्ली की बनी हुई नासपाती के आकृति की फैलने और सिकुड़ने वाली थैली सी होती है। इसका एक हिस्सा चौड़ा और एक हिस्सा तंग होता है, चौड़ा भाग शरीर और तंग भाग गर्दन कहलाता है। यह गर्दन योनि से जुड़ी रहती है। गर्भाशय की लम्बाई ३ इञ्च, चौड़ाई २ इञ्च, और मोटाई १ इञ्च होती है तथा वजन २॥ से ३॥ तोले तक होता है। यह परिमाण उनका है जिनमें गर्भाधान न हुआ हो। जिनमें गर्भ हो चुका है उनका परिमाण इससे कुछ बड़ा होता है।

गर्भ और गर्भाशय

इस गर्भाशय से नलियों द्वारा मिले हुए दो अंड होते हैं। एक दांई ओर और दूसरा बांई ओर होता है।

गर्भाशय में प्रत्येक समय गर्भ धारण की शक्ति नहीं रहती केवल ऋतु के १५–१६ दिनों में गर्भधारण की

शक्ति अधिक होती है। मासिक रजोदर्शन का स्त्री-बीज के साथ अति अधिक सम्बन्ध है। स्त्री बीज गर्भाशय के दोनों ओर स्थित अंडों से पैदा होता है। जब वह स्त्री बीज परिपक्व होता है उस समय ही मासिक स्राव हुआ

करता है। स्त्री बीज परिपक्व होकर नली के रास्ते गर्भाशय की ओर आता है। मासिक स्राव का एक लाभ गर्भस्थिति के लिए यह भी है कि गर्भाशय में सुगमता से गर्भ चिपक सके और गर्भ पोषण के लिए आहार मिल सके। यही कारण है कि स्राव के पश्चात् के १०-१५

दिन गर्भस्थिति के लिए सर्वोत्तम हैं। प्रतिमास एक स्त्री-बीज अंड से निकल कर प्रणाली में आता है, यदि ठीक समय शुक्राणु के साथ संयोग हो जावे तो गर्भस्थिति हो जाती है। यदि शुक्राणु का संयोग न हो तो वह स्त्री-बीज नष्ट हो जाता है। इसलिए सन्तानेच्छु पति का कर्तव्य है कि वह ऋतुकाल की प्रथम चार अथवा छः रात्रियों को छोड़ कर शेष १० या १२ रात्रियों में एक बार ही गर्भाधान करे।

दसवाँ अध्याय

सन्तानोत्पत्ति न होने में शुक्राणुओं की कमी

गर्भाधान के लिये पूर्वोक्त सम्पूर्ण बातों पर ध्यान देते हुये भी सन्तान की प्राप्ति नहीं होती और गर्भाधान क्रिया निष्फल जाती है। इसका बहुधा प्रधान कारण वीर्य में वीर्यकीटो की न्यूनता का होना है। इस कमी को पूर्ण करने के लिये अति आवश्यक है कि मैथुन की संख्या को घटाया जाय और पुष्टिकारक औषधियों तथा अन्न का प्रयोग किया जाय। अधिक विषय से वीर्य में वीर्यकीट कम तथा निर्बल हो जाते हैं जिससे कभी कभी सन्तानोत्पति की सम्भावना कम हो जाती है। याद रहे

कि जो कार्य मर्यादा में किया जाता है वही पूर्ण फल-दायक होता है। ऋषियों ने ऋतु स्नान के चार दिनों के उपरान्त शेष के १२ दिन तक सन्तानोत्पति के लिये मैथुन की आज्ञा दी है जैसा कि प्रथम भी वर्णन किया जा चुका है कि १६ रात्रियों के बाद गर्भाधान करना प्रायः निष्फल जाता है।

उत्तम सन्तान हित उत्तम रज, वीर्य की आवश्यकता

यह शास्त्र-सिद्ध बात है कि जिस वस्तु को तुम जितना भी अधिक से अधिक उत्तम बनाना चाहते हो तो तुम्हें उचित है कि उसके निर्माण के लिये जो भी वस्तु काम में लाई जाय वह भी उत्तम से उत्तम हो। तभी वह वस्तु उत्तम बन सकेगी।

इस सिद्धान्त के अनुसार आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र सबके सब हमें आज्ञा दे रहे हैं कि हे नर नारियो! यदि तुम अपनी सन्तान को अति उत्तम, श्रेष्ठ, निरोग बनाना चाहते हो तो तुम दोनों दम्पातियों को ऐसे आहार विहार और आचरण का प्रयोग करना होगा जो कि पूर्णतया सात्विक तथा पवित्र हो।

इस प्रकार उपरोक्त उत्तम आहार विहार की विधि से रज वीर्य को शुद्ध कर संस्कृत शरीर वाले स्त्री और पुरुष के परस्पर समागम से विकार रहित शुक्र और शोणित मिलकर सर्व प्रकार के दोषों से रहित योनि द्वारा सर्व दोष रहित गर्भाशय में जब मिलते हैं तो निश्चय ही वह उत्तम गर्भ स्थिति होती है जो दोनों दम्पतियों के मनों को सुख आनन्द और शान्ति देने वाली होती है। इसलिये आयुर्वेद शास्त्र हमें बतलाता है कि गर्भस्थिति होने के लिये वीर्य, स्त्री शोणित, योनि और गर्भाशय का शुद्ध व दोष रहित होना अति आवश्यक है।

याद रहे कि जो नर-नारी इन चारों की शुद्धि पर ध्यान नहीं देते उन्हें जहाँ गर्भस्थिति होने में रुकावट रहती है वहाँ पर सन्तान भी अपनी इच्छा के अनुकूल होने में बाधा आ जाती है।

इसी प्रकार आयुर्वेद का कहना है कि यदि क्षेत्र अर्थात् गर्भाशय ठीक नहीं तो उसमें पड़ा उत्तम से उत्तम बीज़ भी ऊसर भूमि की तरह नष्ट हो जाता है, अतः गृहस्थियों को इन चारों बातों की शुद्धि का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिये।

जैसे कपड़े पर अच्छा रंग चढ़ाने के लिये उस कपड़े

को प्रथम से ही भली प्रकार से धो लेना अति आवश्यक है ठीक वैसे ही निश्चय रूप से गर्भस्थिति के लिये भी योनि आदि का हर प्रकार से निरोग और स्वस्थ होना तथा शुक्र शोणित बीज का अपने सब गुणों से युक्त होना भी अति आवश्यक है ।

सद सन्तति निर्माण हित मानव कर्म

सद सन्तति निर्माण हित जो आवश्यक कर्म ।
करना मानव के लिये, कहे शास्त्र ने धर्म ॥१॥
उनका कुछ वर्णन करूँ, वैद्यक के अनुसार ।
सुखी रहें जिससे सदा, सब जग के नर नार ॥२॥
खान पान जो भी करो, हो सात्त्विक आहार ।
जिससे बल पुष्टि बढ़े, बढ़े बुद्धि भंडार ॥३॥
धारण कर स्वच्छ वस्त्र का, सद् पुरुषों का संग ।
देह शोभे मन स्वच्छ हो, चढ़े हृदय पर रंग ॥४॥
वेद पाठ का श्रवण कर, वाणी से मधु बोल ।
पर सेवा कर देह से, मन की आँखें खोल ॥५॥
ममता, दया, उदारता, क्षमा शील सन्तोष ।
जीवन में संचय करो, हो वीरज निर्दोष ॥६॥

इन कर्मों को लायेंगे, जब जीवन में आप।
पाओगे वह सन्तति, जो ज्ञानी निष्पाप ॥७॥
मात पिता की भक्त हो, ध्रुव प्रहलाद समान।
दयानन्द सा सन्त हो, करे जगत कल्याण ॥८॥
दृढ़ प्रतिज्ञ हो भीष्म सम, हो अर्जुन सा वीर।
दानी हो सम कर्ण सा, सुख दुख में जो धीर ॥९॥
गीता, वेद, उपनिषद का भी स्वाधायी होय।
ढूंढन से ना मिल सके, और दूसरा कोय ॥१०॥
ऐसी निर्मल बुद्धि को, ले आवे वह साथ।
पढ़ा पाठ क्षण एक में, धार सदा ले माथ ॥११॥
देख जिसे संसार सब, चकित बड़ा हो जाय।
गद्य पद्य रचना करे, जो सब जन को भाय ॥१२॥
गीता बारम्बार ये, रही हमें समझाय।
कर्त्ता उत्तम कर्म का, सकल सुखों को पाय ॥१३॥
ऐसे ही जब आप सब, करेंगे उत्तम कर्म।
दान मिले शुभ सन्तति, बढ़े जगत में धर्म ॥१४॥

क्योंकि माता पिता का आहार बिहार, सत्याचरण और धर्म शास्त्रों का अध्ययन ही उत्तम सन्तान प्राप्ति में प्रधान हेतु है। इसलिये जो नर नारी अपनी निर्मल और पवित्र बुद्धि द्वारा उपरोक्त कथित बातों से अपने रज वीर्य

को शुद्ध बना कर अदुष्ट योनि (शुद्ध योनि) द्वारा अदुष्ट गर्भाशय अर्थात् (मासिक धर्म से शुद्ध गर्भाशय में) गर्भ धारण करते हैं उनका किया गर्भाधान निश्चय ही उत्तम सन्तान रूपी फल को लाता है।

जैसे निर्मल धुले वस्त्र में चढ़ाया रंग निश्चय ही अति उत्तम और सुन्दर चढ़ता है अथवा रोगी मनुष्य के कोष्ट को प्रथम रेचक औषधियों से शुद्ध कर फिर औषध देने से अच्छा लाभ होता है या बीज और क्षेत्र के उत्तम होने से अन्नादि पदार्थ उत्तम रूप में होते हैं ठीक इसी प्रकार शुद्ध तथा बलवान रज वीर्य के मिश्रण से एक सुन्दर बालक का ही गर्भ में निर्माण होता है।

इसके विषय में चरक संहिता नामक आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ के सूत्र स्थान श्लोक २६ से २८ तक में लिखा है कि रज वीर्य के शुद्ध हुए बिना गर्भस्थिर नहीं रह सकता अथवा गिर जाता है। अतः इन्हें गर्भाधान करने से पूर्व शुद्ध कर लेना अति आवश्यक है।

शुद्ध रज वीर्य की पहिचान

१—दोनों स्त्री पुरुषों को चाहिये कि वह पृथक २ पात्रों में पृथक २ मूत्र त्याग कर और उसमे सात २ दाने

गेहूँ के डाल कर कम से कम चार पाँच दिन पड़ा रहने दें। जिसके मूत्र में दाने फूट निकलें उसका रज अथवा वीर्य शुद्ध है अर्थात् उसे गर्भाधान हित निर्दोष और उपयोगी जानना चाहिये।

इसी प्रकार जिसके मूत्र में पड़े दाने वैसे के वैसे ही पड़े रहें उसके रज वीर्य को विकार अथवा दोषयुक्त समझना चाहिये। उसकी उत्तम औषधियों द्वारा चिकित्सा करके उसे निर्दोष और बलवान बनाने का यत्न करना अति आवश्यक है।

२—जिस स्त्री पुरुष का रज वीर्य पानी में डालने से पानी में न घुलकर नीचे जाकर बैठ जाय वह बलवान कहा गया है अर्थात् वह सन्तानोत्पत्ति में उत्तम है।

३—दो कद्दुओं की जड़ों में स्त्री पुरुष पृथक पृथक सात आठ दिन तक मूत्र त्यागते रहें। जिसके मूत्र से उसकी लता सूख जाय उसी का रज या वीर्य दोष युक्त समझना।

यह उपरोक्त तीनों योग किसी अन्य लेखक के हैं, अतः आप स्वयं परीक्षा करके देख सकते हैं। हमारे अनुभव में यह कभी नहीं आया।

केवल आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार जो वीर्य अति श्वेत, स्वच्छ, और स्निग्ध हो तथा जिसमें से मधु की सी भीनी भीनी गन्ध प्रतीत हो वह वीर्य अति शुद्ध, निरोग, हृष्ट पुष्ट, बलवान और उत्तम सन्तान का हेतु होता है।*

क्योंकि प्राकृतिक नियमानुसार शुद्ध तथा बलवान रज, वीर्य से ही सुन्दर और निरोग सन्तान की उत्पति होती है इसलिये दोनों स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जहाँ वह रज वीर्य के शुद्ध करने का प्रयत्न करे वहाँ पर साथ साथ उसे उत्तम से उत्तम आहार तथा औषधियों से पुष्ट और उसकी वृद्धि इस भांति से करते रहें जैसे कि घड़ा पानी से भरपूर होता है ऐसा अपने को रज और वीर्य से परिपूर्ण रक्खें तभी उनमें सन्तानोत्पति के बलवान और अधिक कीटाणुओं की वृद्धि हो सकेगी।

इसी वैदिक उपाय के आधार पर उपनिषद कारों ने तथा संस्कार विधि में महर्षि दयानन्द जी ने पुष्टि कारक औषधियों और भोजनों के प्रयोग पर विशेष बल देते हुए कहा है कि उत्तम सन्तान हित उत्तम

---

* अशुद्ध रज की सरल से सरल और तात्कालिक लाभ पहुँचाने वाली चिकित्सा हमारी बनाई हुई स्त्री रोग प्रकाश नामक पुस्तक में देख कर लाभ उठाइये।

उत्तम औषधियों से बने पौष्टिक पाकों का मनुष्य को विशेष रूप से सेवन करना अति आवश्यक है जिससे कि मनुष्य वीर्यवान और निरोग बन सके।

इसी प्रकार यजुर्वेद अध्याय ११ और मन्त्र २७ का अर्थ पुरुषों को उपदेश दे रहा है कि हे मनुष्यो! जैसी तुम्हारी भार्या सन्तान को अपनी स्नेहमयी गोद में अति लाड़ और प्यार से पालती है वैसे तुमको भी चाहिये कि जो तुममें अग्नि के समान तेज और ओज से परिपूर्ण अनमोल वीर्य है उसे प्रेम और संयम द्वारा अपनी उत्तम सन्तान के निर्माण हित सदा यत्न द्वारा धारण करते रहो।

उत्तम निरोग और सुन्दर सन्तान हित कुछ आदेश

आयुर्वेद का मत बतलाता है कि जो भोजन या औषधियां अधिक वीर्य उत्पादक और अग्नि वर्द्धक होते हैं वही पुरुष में अधिक और सुन्दर वीर्य को उत्पन्न करके लड़का उत्पन्न करने के हेतु होते हैं। तथा जिन भोजनों में जल अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है उसके सेवन से स्त्री में आर्तव अधिक मात्रा में निर्माण होता है जो

कि कन्या रूपी सन्तति के देने वाला कहा गया है। इसलिये प्राचीन समय में आर्यगण इनके गुणों को जानने के कारण इच्छानुसार पुत्र वा पुत्री पैदा करते थे।

दोनों ही स्त्री पुरुषों को इस बात को कभी भूलना नहीं चाहिये कि जब २ भी मनुष्य किसी पौष्टिक भोजन अथवा औषधि का प्रयोग करता है तो स्वाभाविक ही वह भोजन या औषधि प्राकृतिक नियमानुसार शरीर में वृद्धि को प्राप्त होकर मनुष्य में कुछ उत्तेजना सी देते हैं जिससे मनुष्य में कुछ भोग जैसी भावना पैदा हो जाती है।

याद रहे कि यह इच्छा कुछ ही मिनटों के लिये ही दूध के उफान की तरह होती है इस समय इसे पूर्ण करना आयुर्वेद ने अति हानिकारक बतलाया है। इसे अपने संयम में रखना ही इस समय बुद्धिमता है।

याद रहे कि यदि आपने अपने निर्बल विचारों से इसे पूर्ण कर दिया तो उस वीर्य को शरीर में परिपक्व होने के लिये एक बड़ी भारी बाधा खड़ी हो जायेगी जिससे वीर्य की वृद्धि, शरीर की पुष्टि, मन की प्रसन्नता, विचार शक्ति और सौन्दर्य इन पाँचों अनमोल रत्नों का

नाश हो जायेगा जिसका फल पछतावे के अतिरिक्त और कुछ नहीं निकलेगा।

अब उन कुछ ऐसे योगों का वर्णन कर देना उचित समझता हूँ जिनके द्वारा पुरुष और स्त्रियाँ स्वयं उनका प्रयोग कर अपने शरीर को बलवान, शक्तिशाली और उत्तम से उत्तम सन्तान के हेतु बना सकें।

पुरुषों के लिये कुछ उत्तमोत्तम पौष्टिक योग

१—अकरकरा, अश्वगन्धा, शतावर, बिदारीकन्द, गोखरु, चोबचीनी, छोटी इलायची, आँवलों का चूर्ण प्रत्येक दो दो तोले तथा लोह भस्म, अभ्रक भस्म और बंग भस्म प्रत्येक चार चार माशे लेकर सबके बराबर मिश्री मिला तीन माशे मात्रा में प्रातः तथा सायंकाल शर्करा मिश्रित दूध के साथ प्रयोग करने से मनुष्य में बल, वर्ण, कान्ति और तेज की विशेष उत्पत्ति होती है।

२—मधुयष्टि (मुलहठी) के एक तोले चूर्ण को घृत और मधु की विषम मात्रा के संग मिला जो जन चाटकर ऊपर से मिश्री मिला दूध पीता है आयुर्वेद कहता है कि वह मनुष्य एक विशेष शक्ति प्राप्त करता है।

३—एक सेर उर्द के आटे को घी में भून उसमें

कौंच बीज, मुलहठी, विदारीकन्द, सफेद मूसली और तोंदरी प्रत्येक का चूर्ण तीन तोले तथा लोह भस्म और बंग भस्म पाँच पाँच माशे डाल और फिर सबके बराबर शर्करा मिलाकर एक एक छटाँक के लड्डू बनाकर जो जन ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता हुआ एक लड्डू नित्य प्रति दूध के संग प्रयोग करता है वह अमोघ बल और शक्ति से सम्पन्न हो निरोग रहता हुआ शरीर के परम सुख के आनन्द को प्राप्त करता है।

४—जो मनुष्य अश्वगन्धा के चूर्ण को एक माशा से लेकर तीन माशे तक रुचि के अनुसार दूध, घृत अथवा जल के साथ पन्द्रह या बीस दिन लगातार प्रयोग करता है उसका अति कृश शरीर भी इस प्रकार पुष्ट हो जाता है जिस प्रकार वर्षा से खेती पुष्ट होती है। यह आयुर्वेद का निश्चय मत है।

५—वृहद्धारक अर्थात् विधारा की जड़ के चूर्ण को शतावरी के रस की सात भावना देकर अर्थात् शतावरी के रस में सात बार घोंट कर उसमें से बल और शक्ति के अनुसार आधे तोले से एक तोले तक के चूर्ण को शुद्ध गो घृत के संग कुछ ही दिन प्रयोग करने से मनुष्य उत्तम बुद्धि, स्मृति, तेज, कान्ति और बल को प्राप्त कर लेता है।

६—इसी प्रकार पुरुष रोग प्रकाश पृष्ठ ५८ पर लिखे शतावरी पाक और पृष्ठ ६० पर लिखे छुहारा पाकों का भी दो दो तोले मात्रा में नित्य प्रति जो पुरुष प्रयोग करता है आयुर्वेद उसके लिये कहता है कि वह मनुष्य अति वीर्यवान, तेजस्वी, ओजस्वी और परम कान्ति से युक्त बन जाता है जिससे वह अति सुन्दर, बलवान और निरोग सन्तान को प्राप्त करता है।

७—इसी प्रकार आयुर्वेद कहता है कि जो जन आयुर्वेद का प्रसिद्ध बृहत् पूर्णचन्द्र रस या चन्द्रोदय रस अथवा महालक्ष्मी विलास रसों में से किसी का भी अपने बलाबल और शक्ति को देखकर प्रयोग करता है वह मनुष्य किसी भी प्रकार से नष्ट हुई शक्ति को पुनः प्राप्त कर सबल हो जाता है अर्थात् सब निर्बलताओं से रहित हो जाता है।

८—आयुर्वेद में एक बसन्त कुसुमाकर नामक रस आया है जो कि मधु मेह के लिये एक विशेष लाभदायक रस है जिसके लगातार सेवन से मनुष्य सदा स्वस्थ शरीर, तेजोमय और कान्ति युक्त रहता है। आयुर्वेद ने तो इसका गुण यहाँ तक वर्णन किया है कि जिन जनों का वीर्य किसी भी कारण से दूषित तथा निर्बलावस्था को पहुँच

चुका है जिससे वह सन्तान उत्पत्ति नहीं कर सकते या घर में लड़कियाँ ही होती हैं उनके लिये यह रस अत्यन्त लाभदायक है क्योंकि यह निश्चय रूप से ही पुत्र सन्तान का दाता है।

धर्मशास्त्रों का कहना है कि जो विचारवान पुरुष हित कर आहार विहार का सेवन करते हैं, सोच विचार कर कर्म करते हैं, जिन्होंने अपने मन को विषयों का दास नहीं बनने दिया, तथा जो जन दानी हैं, सब प्राणियों में समदृष्टि हैं, जो मन, वाणी, और कर्म में तत्परता रखते हैं, क्षमा शील और आप्त पुरुषों का संग रखने वाले हैं वास्तव में ऐसे हर प्रकार से निरोग पुरुष ही, अति सुन्दर, देवता और मुनि सन्तान को पैदा कर सकते हैं।

साथ २ शास्त्र यह भी कहता है कि उपरोक्त लक्षणों वाला वीर धीर और विवेक बुद्धि रखने वाला पुरुष वही हो सकता है जिसको अपने पूर्व जन्मकृत शुभा शुभ कर्मों के कारण तथा भगवद् कृपा और दया से सदा ज्ञान देने वाली मति (बुद्धि) शान्ति देने वाली वाणी, सुख देने वाला कर्म, सत्त्व मन, निर्मल बुद्धि, ज्ञान, योग, तप आदि में तत्परता, अभ्यास द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध एवं वैराग्य द्वारा सच्ची लग्न प्राप्त हो चुकी है।

स्त्रियों के लिये कुछ बल कारक योग

१—श्वेत फिटकरी १ तोला और खाँड एक तोला दोनों को भली प्रकार से मिला कर एक एक रत्ती मात्रा में दोनों समय जल के साथ प्रयोग करने से वातज प्रदर शान्त होता है।

२—स्वर्णवंग एक रत्ती प्रातः और एक रत्ती सायंकाल दूध के साथ प्रयोग करने से प्रदर रोग दूर होकर शरीर में बल आ जाता है। कम से कम ४० दिन तक इसका प्रयोग अवश्य करना चाहिये।

३—लोहभस्म शतपुटी तथा वंग (कलई) भस्म को सम परिमाण में लेकर दो दो रत्ती की मात्रा प्रातः सायं मधु के साथ चाटने से शरीर में शक्ति का संचार होकर शरीर में रक्त दौड़ने लगता है।

४—जगत प्रसिद्ध सुपारी पाक को ६ माशे प्रातः काल और ६ माशे सायंकाल चालीस दिन तक दूध के साथ प्रयोग करने से सब प्रकार की निर्बलता दूर होकर शरीर सुन्दर और सुडौल बन जाता है।

५—दक्षिणी सुपारी, माजूफल, तबाशीर, समुद्र-झाग, श्वेतराल, मस्तगी रूमी, छोटी इलायची के दाने

इन सबका चूर्ण करके सम्पूर्ण चूर्ण के बराबर शर्करा मिला कर इस चूर्ण को प्रति दिन तीन माशे प्रातः और सायंकाल जल के साथ प्रयोग करने से श्वेत तथा रक्त दोनों प्रकार के प्रदर दूर होकर शरीर बलवान और स्वस्थ बन जाता है।

६—मुक्ता-शुक्ति एक तोला, गोदन्त भस्म दो तोला और श्वेत राल चार तोला इन सब को भली प्रकार मिला कर दो २ रत्ती की मात्रा में प्रातः और सायंकाल दूध के साथ प्रयोग करने से शरीर सुखी हो जाता है।

७—मुलहठी, शतावर, गोखरू, विदारी कन्द, लाल-चन्दन, फूल मखाना, कौंच बीज, सुपारी दखनी, वंश-लोचन, मस्तगी रूमी, श्वेत मूसली, स्याह मूसली सब को बराबर २ ले सब का चूर्ण बना बराबर की शर्करा मिश्रित कर दोनों समय चालीस दिन तक दूध के साथ प्रयोग करने से शरीर में बल की अति वृद्धि होकर शरीर निरोग और स्वस्थ रहता है।

नोट—इस प्रकार स्त्री जाति के लिये हमारी बनाई स्त्री रोग प्रकाश नामक पुस्तक मे अनेकों बलदायक योग यथास्थान दिये गये है। जिससे स्त्री जाति अपने स्वास्थ को हर एक प्रकार से सुन्दर और स्वस्थ रख सकती है। तथा बलदायक सन्तान को जन्म दे सकती है।

गर्भाधान की सोलह रात्रियों का क्रमशः लाभालाभ

जिस प्रकार वृक्ष में फल लगने से पूर्व फूल आते हैं ठीक इसी प्रकार स्त्रियों में भी प्राकृतिक नियमानुसार स्वाभाविक ही प्रतिमास ऋतुधर्म हुआ करता है जिसका इससे पूर्व भी ऋतुधर्म के प्रकरण में वर्णन कर आया हूँ।

शास्त्रों में रजस्राव को पुष्प नाम से भी कहा गया है जिसका अर्थ फूल है। इस कारण इस रज रूपी फूल के आने के उपरान्त ही गर्भाधान द्वारा मानव जाति को सन्तान रूपी फल की प्राप्ति हुआ करती है।

जिस प्रकार स्वच्छ कपड़े पर रंग सुन्दर और अच्छा चढ़ता है ठीक इसी प्रकार शुद्ध गर्भाशय में यथोचित समय पर आयुर्वेद शास्त्रानुसार धर्म भावनाओं तथा प्रेम पूर्वक गर्भाधान करने से ही हृष्ट-पुष्ट तथा दीर्घ जीवी सन्तान उत्पन्न हो सकती है।

इसलिये हे देवियो तथा भारत की वीर लक्ष्मियो! वेद तथा ऋषियों की आज्ञा को मान कर उत्तम सन्तान को चाहने के लिये आयुर्वेदोक्त निषिद्ध दिनों से बच कर ही गर्भाधान करना उचित है। जिससे उत्तम सन्तान रूपी फल की प्राप्ति हो सके।

याद रहे कि जो नर नारी निषिद्ध रात्रियां पर ध्यान नहीं देते वह नाना प्रकार की हानियों के शिकार बन जाते हैं इसलिये निषिद्ध रात्रियों में गर्भाधान की क्रिया करने से जो मनुष्य को हानियाँ होती हैं उनका आयुर्वेद शास्त्रानुसार वर्णन कर देना उचित समझता हूँ।

नोट—कई भाई पूछा करते हैं कि सन्तान उत्पन्न करने के लिये रात्रियों की गणना सौर मास की तिथियों से करना चाहिये या चन्द्र मास की तिथियों से।

उनके लिये कहना है कि सन्तानोत्पत्ति के लिये

आयुर्वेद सिद्धान्तानुसार न तो वह सौर मास की तिथियों की ही गणना करें और न ही चन्द्रमास की।

यहाँ तो केवल उन रात्रियों से ही गणना करनी है जिस दिन से स्त्री को ऋतु धर्म का आना आरम्भ होता है और यह काल गर्भ धारण के लिये सोलह रात्रियों तक रहा करता है।

परन्तु याद रहे कि प्रथम की चार अथवा छः रात्रियों का सर्वथा परित्याग कर शेष की दश रात्रियाँ शास्त्रों ने गर्भाधान के लिये श्रेयस्कर बतलाई हैं।

जिस प्रकार नदी के बहते हुए जल में कोई भी वस्तु ऊपर की तरफ नहीं जा सकती, इसी प्रकार पहिले के चार अथवा छः दिनों में गर्भाशय से बहते हुए गन्दे रक्त के कारण वीर्य भी गर्भाशय में नहीं पहुँच सकता। यदि किसी प्रकार पहुँच भी जाये तो प्रथम तो उससे गर्भ होता ही नहीं और यदि रह भी जाये तो—

प्रथम रात्रि की गर्भ स्थिति से उत्पन्न बालक तत्काल ही मर जाता है और पुरुष का वीर्य भी निष्फल जाता है तथा साथ साथ में पुरुष को उपदंश आदि रोग होने का भी भय आ उपस्थित होता है। यहाँ वैद्यक

शास्त्र यह कहता है कि जिनकी सन्तानें जन्म लेते ही मर जाती हैं उसका यही प्रधान कारण है।

द्वितीय रात्रि के संभोग से यदि गर्भ रह जाय तो जन्म लेने के बाद बालक दस दिन के भीतर ही मर जाता है तथा स्त्री को गर्भाशय आदि रोग हो जाते हैं तथा साथ साथ में पुरुष की आयु भी क्षीण हो जाती है।

तृतीय रात्रि के समागम से यदि गर्भ रह जाय तो अधूरे अंगों वाली तथा थोड़े दिन तक जीने वाली सन्तान पैदा हुआ करती है तथा पुरुष के नेत्रों की ज्योति अति निर्बल पड़ जाती है अतः जिनकी सन्तानें निर्बल होती हैं या शीघ्र मर जाती हैं उनका प्रधान कारण आयुर्वेद शास्त्र ने यही बतलाया है।

इसी प्रकार चतुर्थ रात्रि के गर्भाधान से सन्तान तो पूर्ण अंगों वाली होती है परन्तु अति निर्बल अंगों वाली तथा साथ साथ में स्त्री को प्रसव के समय कष्ट विशेष रूप से भोगना पड़ता है। कारण कि जब तक गर्भाशय का सम्पूर्ण गन्दा रक्त निकल कर साफ न हो जाय तब तक वह कोई न कोई विकार पैदा करता ही रहता है। इसलिये आयुर्वेद का पूर्ण आदेश है कि जब तक गर्भा-

शय की पूर्ण रूप से शुद्धि न हो जाय तब तक कभी भूल करके भी सम्भोग नहीं करना चाहिये।

इस कारण निन्दनीय हैं, रात प्रथम की चार।
करना गर्भाधान हित, इनका तजो विचार॥
कहता आयुर्वेद है, बारम्बार पुकार।
निर्मल बुद्धि ज्ञान से, करिये कर्म विचार॥

देखिये

चार प्रथम की रात में, जो करते संभोग।
पाते हैं निज देहि में, घृणित अनेकों रोग॥
मन्द करे निज दृष्टि को, आयू का भी नाश।
तेज ओज भी कम रहें, राखो दृढ़ विश्वास॥
चार रात का वर्तना, इस हेतु दुख मूल।
हे नर जीवन में कभी, करो न ऐसी भूल॥

पाँचवीं रात्रि

करते पंचम रात्रि में, जो जन गर्भाधान।
उत्पन्न हो जो बालिका, निश्चय निर्बल जान॥
जीवन भर रोगी रहे, रूखा रहे मिजाज।
घाती अपने आपकी, कहता वैद्य समाज॥
माता बन पैदा करे, जो भी वह सन्तान।
तन पतला बुद्धि लघु, नाना दुख की खान॥

छठवीं रात्रि

रात्रि में जब षष्ठ के, हो जाता सम्बन्ध ।
मध्य गुणी सन्तान हो, विद्या में अति मन्द ॥
तेज ओज भी कम रहें, और रहे डरपोक ।
बल साहस भी अल्प हो, शब्द कहे यह कोक ॥
चरकादि जो ग्रन्थ हैं, उन्हें लीजिये देख ।
छठीं रात तक त्याग का, साफ लिखा है लेख ॥
इस कारण हे नारि नर, बात रखो यह याद ।
करो समागम तुम सदा, छठीं रात के बाद ॥
जिसका तुमको फल मिले, सद् सन्तति का दान ।
सुन्दर हो अति स्वस्थ हो, जीवन भर कल्याण ॥
वाणी जिसकी नम्र हो, हृदय प्रेम का स्रोत ।
नैनों में जगती रहे, ज्ञानमयी शुभ ज्योत ॥

इस हेतू

ग्यारह तेरह पाँचवीं, और प्रथम की चार ।
छठी रात को साथ ले, सब चिन्ता के द्वार ॥
शेष आठ जो रात हैं, इनका करो प्रयोग ।
मनचाही सन्तान का, जिससे उपजे योग ॥

सातवीं रात

जो जन सप्तम रात में, करते हैं आधान।
कन्या स्वस्थ निरोग का, प्राप्त करें शुभ दान॥
दया प्रेम उपकार के, जो राखे मन भाव।
विनय नम्रता प्रार्थना, का नहिं छोड़े चाव॥
अपना पर देखे नहीं, सबसे राखे प्रेम।
जीवन भर जिसका रहे, यही सदा एक नेम॥
निज चतुराई से करे, घर के सारे काम।
दिव्य गुणों से युक्त हो, लहे सुशोभित धाम॥

आठवीं रात्रि

रात्रि में जो अष्ठ के, करते हैं संभोग।
जन्मे सुन्दर सन्तति, ऐसा उपजे योग॥
सत्याचार विचार को, लेकर आवे साथ।
और झुकावे प्रेम से, वृद्ध चरणन में माथ॥
सुन्दर शील स्वभाव हो, निर्मल सभी विचार।
कर्म करे जो भी वह, करे शास्त्र अनुसार॥
करे प्रार्थनोपासना, अति प्रेम के संग।
हृदय पर जिनका चढ़े, अति मनोहर रंग॥
नित्यानन्द स्वरूप का, हर क्षण करे प्रकाश।
ऐसी उत्तम सन्तति, उस घर करे निवास॥

नवीं रात्रि

नौवीं रात्रि में करें, सदा समागम जोय।
पुत्रि शोभा शालिनी, का फल पावें सोय ॥
जो गुण में अति शील हो, और निपुण धनवान।
सब जीवों में आतमा, समझे आप समान ॥
सुदृढ़ कान्तिवान हो, और अति बलवान।
प्रिय लगे जिसको सदा, जप तप सेवा दान ॥
आने दे मन में नहीं, यश आदर के रोग।
काम क्रोध मद लोभ से, हर क्षण रहे निरोग ॥

दसवीं रात्रि

जो चाहो निज गृह में, पठित पुत्र धनवान।
आज्ञाकारी नम्र हो, और बहु गुणवान ॥
शील स्वच्छता सादगी, से जो राखे प्यार।
कर्ता उत्तम कर्म का, रहित सदा हंकार ॥
शीतल होवे चाँद सम, गाये हरि गुणगान।
वैभव बुद्धि ज्ञान में, चमके भानु समान ॥
धर्म प्रिय सद् भावना, से परिपूरण होय।
पूजे केवल ब्रह्म को, नहीं दूसरा कोय ॥
दसवीं रात्रि में करो, तब सुन्दर सहवास।
मन चाही सन्तान तब, घर में करे निवास ॥

ग्यारहवीं रात्रि

रात्रि में जो ग्यारहवीं, करते हैं आधान।
पड़े भूल में है वही, विद्वत् करें बखान॥
ग्रन्थ जो आयुर्वेद का, स्पष्ट रहा बतलाय।
आर्तव जो इस रात का, अति निर्बल हो जाय॥
जिससे जन्मे आन कर, जो कन्या सन्तान।
निर्बल बुद्धि देह से, अथवा बन्ध्या जान॥
मन वश करने का रहे, उसे नहीं कुछ बोध।
छोटी छोटी बात पर, उपजावे बहु क्रोध॥
हस्त पाद या नेत्र में, कोऊ रहे विकार।
कर्म जो वाणी कान के, उनमें भेद विचार॥
मन मलीन हो सर्वदा, या विकृत मन स्नेह।
पीठ कमर कुबड़ी रहे, या भय रूपा देह॥
टेढ़े मेढ़े दाँत हों, भूरे शिर के बाल।
सुन्दरता में अल्प हो, साहस में कंगाल॥
जो चाहो निज गेह में, सन्तति तुम निर्दोष।
त्याग वास इस रात का, जान यही सब दोष॥

बारहवीं रात्रि

रमण करें जो पत्नी से, कर निज हिरदय प्यार।
सदा बारहवीं रात में, धर्म शास्त्र अनुसार॥

आये उस घर जीव जो, हो अति धीरजवान ।
अति प्यारी जिसको लगे, जप तप सेवा दान ॥
सेवक हो पितु मात का, मन से सदा पुनीत ।
गुरु आज्ञा का मानना, जिसकी सुन्दर रीत ॥
प्रेमी हो सत्संग का, और करे स्वाध्याय ।
सम दृष्टि शीतल सदा, दया प्रेम दर्शाय ॥
ऐसी उत्तम सन्तति, जिस घर में आ जाय ।
ईश्वर कृपा अपार से, स्वर्ग सदन कहलाय ॥

तेरहवीं रात्रि

सब जन को है दे रहा, धर्म शास्त्र सन्देश ।
चाहो जो सन्तति भली, मान शास्त्र आदेश ॥
रात्रि तेरवीं में करो, कभी नहीं संभोग ।
दोष युक्त सन्तान का, आ बनता है योग ॥
आती जो सन्तान है, होती बल में क्षीण ।
उत्तम भाव विचार से, भी रहती है हीन ॥
दृष्टि हो विष से भरी, वाणी नीम समान ।
श्रवण मनन मैला रहे, यह निश्चय कर जान ॥
जो भी वह कारज करे, करे स्वार्थ के साथ ।
सुख दुख में वह और का, नहीं बटावे हाथ ॥

हट्ठी क्रोधी बावली, तेज ओज से हीन।
परछिद्रा अन्वेषणी, दूषित कर्म प्रवीण॥
देही पर अति लोम हो, या गंजा हो शीश।
नास्तिक भाव विचार से, जपे नहीं जगदीश॥
इस कारण इस रात का, त्याग दीजिये वास।
होना पड़े न भूलकर, जिससे कभी उदास॥

चौदहवीं रात्रि

करते हैं जो चौदहवीं, रात्रि में आधान।
पाते हैं उस पुत्र को, जो हो गुणी महान॥
इस कारण इस रात का, धार सर्वदा ध्यान।
सुन्दर भाव विचार से, करो सदा आधान॥
पाओगे तव गृह में, वह उत्तम सन्तान।
आत्मबली तन से बली, विद्या में धनवान॥
सुन्दर शील स्वभाव की, सुदृढ़ शक्तिवान।
व्रतधारी कृतज्ञ हो, बल में सिंह समान॥
अनुरागी हो धर्म की, पूरण स्वस्थ निरोग।
उत्तम गुण सम्पन्न हो, करे ब्रह्म से योग॥
निर्लोभी निरपक्ष हो, शुद्ध बुद्धि निर्दोष।
विद्या ज्ञान विज्ञान की, रहे सर्वदा कोष॥

पन्द्रहवीं रात्रि

जो चाहो निज गृह में, शुभ कन्या का योग।
करो पन्द्रहवीं रात में, प्रेम सहित संभोग॥
मिलेगी कन्या आन कर, कृष्ण भंवर सम बाल।
गौर वर्ण से युक्त हो, चले मनोहर चाल॥
हंस मुखी पति भक्तिनी, स्वस्थ दया का रूप।
वेद प्रिया विश्वासिनी, जपे जो सत्य स्वरूप॥
सेवा पर उपकार का, करे सर्वदा दान।
शूरवीर रानी बने, झाँसी सिंह समान॥
स्वच्छ हृदय सद भावनी, न्याय प्रिय अरु धीर।
जीवन हो इस भांति का, जैसे निर्मल नीर॥

सोलहवीं रात्रि

रात्रि सुन्दर सोलहवीं, का रख जो जन ध्यान।
करते गर्भाधान हैं, कर रक्षा निज प्राण॥
मिले जो बालक आन कर, होवे आयुष्मान।
तेजस्वी ओजस्वी अरु, हर जन में यशवान॥
श्रमजीवी अरु स्वस्थ हो, मन से सदा निरोग।
प्रेमी पांचों यज्ञ का, करे ब्रह्म से योग॥
कल कौशल में निपुण हो, मन से सदा उदार।
आश्रयदाता सबन का, जो आज्ञा कर्तार॥

सब जन का मंगल चहे, करे ज्ञान का दान।
ब्रह्म कृपा से आ मिले, ऐसी शुभ सन्तान ॥
चेहरा फूल गुलाब सम, चमके लाल गुलाल।
देख देख जिसको सदा, होगे तुम्हीं निहाल ॥
उत्तरोतर ज्यों रात का, करोगे तुम उपभोग।
जग शोभा परलोक में, पाओगे सुख भोग ॥
जो गृहस्थि जितना अधिक, ब्रह्मचर्य व्रत धार।
करते गर्भाधान हैं, अपना करें उद्धार ॥
उत्तम फल फूलादि, वृक्ष लदा जब होय।
शोभा में उसके रहे, तिलभर कभी न कोय ॥
इस भांति जब आमिले, जिसको शुभ सन्तान।
वह भी शोभा युक्त हो, सुन्दर वृक्ष समान ॥
हो जाती जिस गृह में, ब्रह्म भक्त सन्तान।
उस घर को कर देत है, सूरज ज्योत समान ॥

आयुर्वेद यथा-यथा स्थान पर हमें यही शिक्षा देता चला आ रहा है कि हे मनुष्यो! उत्तरोत्तर रात्रियों में किया समागम पूर्ण और उत्तम फल का दाता होता है कारण कि—

हम जितना भी सद् सन्तति निर्माण हित अन्तिम से अन्तिम रात्रियों में समागम करेंगे उतना ही हमारे वीर्य

को जहाँ अधिक से अधिक पुष्ट होने में समय मिल जायेगा वहाँ पर साथ साथ सत्संग और स्वाध्याय आदि उत्तम कर्मों के करते रहने से हमारा वीर्य भी उत्तम विचारों से पवित्रता की ओर आता रहेगा जिससे कि हम अपनी सन्तान को भी अपने उत्तम विचारों से उत्तम ही पायेंगे।

जैसे आयुर्वेद में एक पाठ आया है कि मर्दनं गुण वर्धनम् अर्थात् जिस औषध को तुम जितना भी अधिक से अधिक गुणकारी बनाना चाहते हो उसका उतना ही अधिक मर्दन करो।

क्योंकि वैदिक सिद्धान्तानुसार जिस भी रस और धातु आदि औषधियों को जितना भी अधिक दिनों तक घोटा जाता है वह उतनी ही अधिक उपयोगी बनती चली जाती है। इसी प्रकार पाठ को जितना अधिक घोटा जाता अथवा विचारपूर्वक पढ़ा जाता है वह उतना ही अधिक स्मरणशक्ति में स्थित हो जाता है।

सारांश यह है कि हम अपने विचार और तप द्वारा अधिक से अधिक दिन तक ब्रह्मचर्य को संयम में रखकर अपने विचारों को निर्मल, शुद्ध एवं सुन्दर बनाते हुए सन्तान के हेतु समागम करेंगे उतनी ही हम उत्तमोत्तम

सन्तान को उपलब्ध कर सकेंगे। इसीलिये तो कहा है कि—

विधि शास्त्र से जो करें, प्रेम सहित आधान।
वही तो पाते सन्तति, अति सुन्दर गुणवान॥
शुद्ध होवे जब धारणा, उत्तम होवे ध्यान।
सुन्दर सरल विचार की, तब होवे सन्तान॥
गीता वेद उपनिषद का, अध्ययन करें जो लोग।
साधु ब्रह्म विचार की, वही पाते हैं योग॥
जिन दम्पत्ति के चित्त में, रहे ओं का नाद।
ईश्वर भक्त सपूत का, मिलता वही प्रसाद॥

अतः जिनको पुत्र की इच्छा हो वे छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं रात्रियों में गर्भाधान करें और जिनको कन्या की इच्छा होवे पाँचवीं सातवीं, नौवीं तथा पन्द्रहवीं रात्रि में समागम करें।

उत्तम और सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने के कुछ नियम

१—जैसे किसी धर्मकार्य करने के समय हमारे विचारों की पवित्रता आवश्यक है वैसे ही गर्भाधान के

समय भी दम्पति को अपने विचार शुभ रखने चाहिये।

२—स्त्री पुरुष को गर्भाधान के दिन स्नान करके सुन्दर और स्वच्छ वस्त्रों को धारण करना उचित है, क्योंकि स्वच्छ वस्त्रों को पहन कर गर्भाधान करने से मन सात्विक और निर्मल हो जाता है जिसका अति सुन्दर प्रभाव सन्तान पर पड़ता है।

३—गर्भाधान के लिये सर्वदा लकड़ी का तख्तपोश ही प्रयोग करना चाहिये क्योंकि एक तो गर्भाधान के समय शरीर सीधा रहने से गर्भस्थिति शीघ्र होती है और दूसरा उस पर किसी बिजली आदि का प्रभाव नहीं होता। आजकल प्रायः बड़े २ घरों में पीतल और लोहे के बने हुए पलंगों पर लोग शयन करते हैं। याद रहे कि धातुवाली चारपाइयों में बिजली के प्रवेश होने का भय रहता है।

४—जिस दिन गर्भाधान की पूर्ण इच्छा हो उस दिन अग्नि, वायु, सूर्य तथा चन्द्रमा का सेवन अवश्य कर लेना चाहिये जिसका फल यह होता है कि जो भी सन्तान आती है निरोग बलवान और कान्तियुक्त होती है।

५—गर्भाधान से पूर्व मल मूत्रादि वेगों से निवृत्त होकर योनि को भली प्रकार से स्वच्छ कर लेना चाहिये। जैसे समस्त देह को शुद्ध और निरोग रखने के लिये नित्यप्रति का स्नान अति आवश्यक है इसी प्रकार मानव सन्तति को निरोग और सुन्दर बनाने का जो योनि रूपी यंत्र हैं उसको भी स्वच्छ रखना प्रत्येक स्त्री जाति का एक परम कर्तव्य है।

क्योंकि मूत्र त्याग और पति संग होने के उपरान्त स्त्री के भगोष्ठों के इधर उधर थोड़ा बहुत मैल जम जाता है जिससे फिर योनि में नाना प्रकार के खाज आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिये योनि को सदा स्वच्छ रखना एक अति आवश्यक कार्य है।

जो बुद्धिमान और विचारशील स्त्रियाँ योनि को जितना भी अधिक स्वच्छ रखती हैं वह उतना ही योनि सम्बन्धी रोगों से मुक्त रहती हैं अतः माताओं को चाहिये कि अपनी छोटी बच्चियों को भी आदि से इसे स्वच्छ रखने का अभ्यास कराती रहें जिससे कि उन्हें भी पवित्रता रखने का एक स्वभाव पड़ जाये।

६—उत्तम सन्तान पैदा करना स्त्री पुरुष के आहार

पर निर्भर है इसलिये दोनों को उत्तम भोजन तथा बल-बुद्धिकारक औषधियों का प्रयोग करते रहना चाहिये।

७—सामान्य अवस्थाओं में प्रतिदिन तेल की मालिश करनी अति आवश्यक है। परन्तु गर्भ स्थिति हो जाने के उपरान्त गर्भिणी के लिये शास्त्रों ने तेल की मालिश का निषेध किया है।

८—गर्भाधान के लिए सम्भोग एक मास में एक ही बार करना चाहिये। इसका अन्य गुणों के साथ साथ एक लाभ यह भी है कि यदि गर्भ स्थिति हो गई तो उस तारीख का ज्ञान होने से प्रसव के दिन जानने में भी सुगमता होती है तथा स्त्री तथा पुरुष दोनों का स्वास्थ भी ठीक बना रहता है।

९—गर्भाधान स्त्री और पुरुष दोनों की इच्छा के बिना कदापि नहीं होना चाहिये। ऐसा धर्मशास्त्रों का आदेश है।

१०—गर्भाधान के समय मन प्रसन्न और चिन्ताओं से रहित होना अति आवश्यक है।

११—इतना आनन्द में मग्न नहीं हो जाना चाहिये जिससे मन में बुरे विचार आने लगे।

१२—गर्भाधान के दिन भोजन सुपच, हलका और बलवीर्य-वर्द्धक होना चाहिये।

१३—खाली पेट गर्भाधान नहीं करना चाहिये। इससे वायु कुपित होकर गर्भाशय में विकार पैदा कर देती है।

१४—रुग्णावस्था में गर्भाधान कभी भूल कर भी नहीं करना चाहिये।

१५—अपनी आने वाली भावी सन्तान को जिस भी किसी बात में चतुर या योग्य बनाना चाहती हो तो उसी बात की अपने मन में विचारधारा और संकल्पों को बढ़ाते रहो।

१६—परम पूज्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज अपने लिखे सत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ में गृहस्थियों को स्पष्ट रूप से उपदेश दे रहे हैं कि जो गृहस्थी जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने हारे, सुशील, सत्यवादी, पुरुषार्थी, उदारात्मा, शान्त चित्त, उत्साही, योगी, ज्ञानी, न्यायप्रिय, ईश्वरादेशित गुण, कर्म और स्वभाव में वर्तने वाले, सद पुरुषों के प्रेमी, पक्षपात रहित, सुख दुख में समान भाव, अपमान को अमृत और मान को विष के समान समझने वाले, सन्तोषी, राग द्वेष से

रहित, गम्भीराशय, तन मन और धन से परोपकार करने वाले, निर्भय, शोक रहित, यज्ञों के कर्ता, योगाभ्यासी, समदृष्टि, दिव्य गुणों को धारण करने वाले, भद्र, सर्व हितकारी वचन बोलने वाले, तथा विद्या और धर्म की निरन्तर उन्नति करने वाले होते हैं। वे ही नर नारी (गृहस्थी) निश्चय ही अपने घर में उत्तम सन्तान प्राप्ति के अधिकारी हैं अर्थात् ऐसे गृहस्थी ही अपने घर में कुलदीपक सन्तान पैदा कर सकते हैं।

इस प्रकार जो नर नारी उपरोक्त सोलह प्रकार के नियमों का पालन करते हुए गर्भाधान करते हैं वह अवश्य ही मनचाही सन्तान पैदा करते हैं अर्थात् ऐसी आत्माओं के घर में ही सब प्रकार से कल्याणकारिणी सन्तान का उदय होता है।

हे प्यारे भाइयो तथा बहिनो! उत्तम से उत्तम सन्तान पैदा करना आपके पूर्ण अधिकार में है। इस प्रकार भावना के दिये हुए अपने अधिकार को अपनी विवेक बुद्धि द्वारा प्रयोग में लाना सर्वशक्तिमान भगवान की आज्ञा का पालन है अर्थात् उसकी सर्वोत्तम पूजा है जो कि मानव समाज के लिये अत्यन्त उत्तम कर्म है।

इस कारण उत्पन्न करो, तुम उत्तम सन्तान ।
हो पूजा पर ब्रह्म की, अपना भी कल्याण ॥

जो मनुष्य अपने जीवन में ईश्वरीय आज्ञाओं द्वारा अपने ईश्वर को पूजते हैं ऐसे नर नारी पृथ्वी पर धन्य हैं, वही सच्ची मातृ भूमि के सच्चे सपूत हैं। ऐसे महानुभावों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह उतनी ही थोड़ी है ।

सद् सन्तति प्राप्ति के कुछ अनमोल साधन

जग भर के नर नारियो, सुनो वचन दो चार ।
बातें ज्ञान विचार की, जो सुख देने हार ॥
लाओगे आचरण में, कहा शास्त्र का मान ।
सत्यदेव हो जायेगा, जीवन का कल्याण ॥
वीर धीर बलवान अरु, योगी सत्याचार ।
जनना सन्तति आपके, है पूरण अधिकार ॥
जो चाहो शुभ सन्तति, निर्मल रखो विचार ।
धर्म कर्म प्रेम रख, प्रभु भजन प्रभु प्यार ॥
जब तुमरे हो जायेंगे, उत्तम भाव विचार ।
आराधन शुभ कर्म सब, जो आज्ञा कर्तार ॥

तब तुम निश्चय पाओगी, ऋषि मुनी सन्तान।
तेज ओज बल से भरा, और बहुत गुणवान॥
शुभ संकल्पों में रहे, जिसका मन भरपूर।
राग द्वेष अंहकार से, रहे सर्वदा दूर॥
सुन्दर हो अति श्रेष्ठ हो, और पराक्रमवान।
यशवन्ता संसार में, गुणीजन करें बखान॥
रहे पुजारी ब्रह्म का, प्राकृत पूजा त्याग।
आडम्बर के कर्म से, रखे नहीं अनुराग॥
धर्म शास्त्र का जो करे, प्रेम सहित स्वाध्याय।
अपने ज्ञान विज्ञान से, शोभा जगत बढ़ाय॥
काम क्रोध अरु ईर्षा, जिसे न छूने पाय।
ऐसा ज्ञानीवान हो, रहे शास्त्र बतलाय॥
गौरव अपने देश का, रहे बढ़ाता जोय।
समदृष्टि विचरे सदा, संशय रहे न कोय॥
गुण में अति सुन्दर रहे, चित्त से सदा उदार।
मधुवक्ता प्रिय भाषी हो, राखे निज प्रभु प्यार॥
वृद्ध जनों का प्रेम से, रहे जो करता मान।
दयावान, धर्मात्मा, ऐसी हो सन्तान॥
जिसका यश जग गायेगा, और करेगा मान।
शोभा भी अक्षय मिले, विद्वज करे बखान॥

आज्ञा आयुर्वेद की, इस कारण ले मान।
अपने को शोभा मिले, हो उत्तम सन्तान॥

निम्नलिखित गृहस्थी उत्तम सन्तान पैदा करने से वंचित रहते हैं

१—जो अपने ब्रह्मचर्य रज को संयम द्वारा संभाल कर नहीं रख सकते।

२—जिनका खान पान और कार्य व्यवहार मलिन है।

३—जो काम क्रोध और लोभादि शत्रुओं के जाल में फंसे रहते हैं।

४—जिनका घर सदा नाना प्रकार के क्लेशों से युक्त रहता है।

५—जिन्हें अपने कर्तव्य कर्म का ज्ञान नहीं।

६—जिन्हें इन्द्रियों की क्षुधा नित्य सताती रहती है।

७—जो सदा आलसी रहते हैं।

८—जिन्हें अपने क्रिया-कर्म पर विश्वास नहीं है।

९—जिन्हें अपने तन मन की शुद्धि का बोध नहीं।

१०—जो स्वार्थ परायण रहते हैं।

११—जिन्हें अपने देश जाति व अपने आपके उत्थान का ध्यान नहीं।

१२—जो आयुर्वेद के सिद्धान्तों को न जानते या न मानते हैं।

१३—जो परोपकारी नहीं।

१४—जिन्हें जप तप करने का अभ्यास नहीं।

१५—जिन्होंने भगवद् प्रार्थनोपासना द्वारा अपने मन को पवित्र नहीं किया।

१६—जो पवित्र ग्रन्थों के सत्संग और स्वाध्याय से प्रेम रखना नहीं जानते।

१७—जो पर सेवा द्वारा यश मान के भूखे हैं।

१८—जिन्हें सच्चे धर्म से प्यार नहीं।

१६—जिनमें आत्म समता की भावना नहीं।

२०—जो भगवान के दिये हुये अमानती तन, मन और धन द्वारा प्राणी मात्र की सेवा करना नहीं जानते।

स्त्री की इच्छा को पूर्ण करने के लिये पुरुष का कर्तव्य

यह पुरुष जाति को सदा स्मरण रखना चाहिये कि जब स्त्री जाति रजोदर्शन से शुद्ध हो चुकती है तो सृष्टि

नियमानुसार उनके मन में पति संसर्ग की स्वाभाविक ही इच्छा उत्पन्न हो जाती है जैसे कि प्रथम भी एक स्थल पर दृष्टान्त देकर समझा आया हूँ। परन्तु—

स्त्रियाँ लज्जावश इस मनोभावना को अपने मुख से कहने में असमर्थ सी हो जाती हैं। कारण कि स्त्री जाति में पुरुषों की अपेक्षा लज्जा की मात्रा बहुत ही अधिक पाई जाती है। अतः जिन लक्षणों से स्त्री जाति संसर्ग चाहती है उनका कुछ उल्लेख नीचे कर देना आवश्यक समझता हूँ।

जिन्हें आप लोग भली प्रकार से जानकर अपनी प्राण प्रिया भार्या की मनोकामना को समय पर उचित रूप से पूर्ण कर उनके स्वास्थ और प्रसन्नता में सहयोग दे सकते हैं।

समागम प्रिय स्त्री के शास्त्रोक्त लक्षण

१—स्त्री के मुख-मंडल पर प्रसन्नता और मन्द मन्द मुसकराहट का होना।

२—चेहरे का कुछ दुर्बल सा पड़ जाना।

३—कमर, स्तन, और उरु प्रदेशों का फड़कना।

४—नेत्रों में कुछ शिथिलता और लाली सी आ जाना।

५—बारम्बार उवासियों का आना।

६—अपने पतिदेव से बारम्बार बातचीत करना अथवा उसे अति प्रेममय दृष्टि से देखना।

७—शीशे में अपनी आकृति को बारम्बार देखना तथा केशों की सुन्दरता को अत्यधिक संवारना।

८—श्वास की गति में कुछ तीव्रता सी आ जाना।

९—अगर कोई बच्चा उसके पास आ जाय चाहे वह अन्य किसी का हो अथवा अपना उसे बड़े प्रेम से उठाकर स्नेह की दृष्टि से देखना इत्यादि लक्षणों में से स्वभाविक ही कोई न कोई लक्षण प्रगट हो जाते हैं।

इसी प्रकार सुश्रुत संहिता में भी लिखा है कि ऋतु-स्नान के उपरान्त जिस नारी में निम्नलिखित लक्षण दिखलाई दे वह पति का भौतिक प्रेम चाहती है।

१—शरीर, मुख और दन्त क्लेद युक्त प्रतीत हों।

२—प्रेम वार्ता करने तथा सुनने की उत्सुक हो।

३—जिसकी कुक्षि, नेत्र और रोम कुछ शिथिल प्रतीत हों।

अतः ऐसी अवस्था में पतिदेव का एक अति आवश्यक धर्म और परम कर्तव्य हो जाता है कि वह ऋतुस्नान से शुद्ध हुई अपनी प्राण प्रिय भार्या की प्राकृतिक और स्वभाविक इच्छा को ऋतुकाल की षोढ़प रात्रियों में जो निन्दित रात्रियाँ कही हैं उनका त्याग कर शेष किसी भी रात्रि में जिस दिन स्वभार्या को सन्तानोत्पत्ति के लिये संभोग की प्रबल इच्छा हो अवश्य ही पूर्ण करे ऐसा धर्म तथा कामशास्त्रों का आदेश है।

शास्त्र कहता है कि जो पति स्वपत्नी से विरक्त रहता है उसकी उस स्वाभाविक और धार्मिक मनोभावना को पूर्ण नहीं करता मानों वह उस समय अपनी भार्या के हृदय को क्लेश पहुँचाने के कारण एक महान पाप कर रहा है। जिसका अन्त में परिणाम यह निकलता है कि या तो घर में कलह क्लेश बढ़ जाता है अथवा स्त्री के सन्तप्त रहने से उसके गर्भाशय में नाना प्रकार के विकार खड़े हो जाते हैं।

उपरोक्त बात का विचार रखते हुए यह न समझ लेना चाहिये कि स्त्री ऋतुधर्म से अब शुद्ध हो चुकी है इसलिये ऋतुकाल की शेष बारह रात्रियों में जब भी चाहे उसकी वासना को शान्त करना हमारा धर्म है। ऐसा नहीं।

प्रत्युत शास्त्र कहता है कि एक मास में ऋतुधर्म से शुद्ध हुई स्वपत्नी से केवल सन्तानोत्पति के विचार से परस्पर की इच्छा के अनुकूल एक ही वार संभोग करना तुम्हारा धर्म है।

इस प्रकार जो विचारवान शास्त्रादेशित नियमों का पालन कर स्वपत्नी को प्रसन्न रखता है वास्तव में वही ज्ञानी और अपने धर्म का सच्चा मित्र है। ऐसे ज्ञानी लोग ही चिरजीवी, स्वस्थ, निरोग रहते हुए अपने पवित्र और बलिष्ठ वीर्य द्वारा बुद्धिमान, गुणवान, यशस्वी, तेजस्वी, और वीर योद्धा सन्तान को पैदा कर सकते हैं।

आजकल प्रायः सब देशों में भी यही रीति अपना कार्य कर रही है कि स्त्री ऋतुधर्म से शुद्ध होने के उपरान्त जिस दिन भी पतिदेव का संग चाहती है तो वह अन्य दिनों की अपेक्षा उस दिन अपने को नाना प्रकार के शृङ्गार आदि से विशेष रूप से सुसज्जित बना कर रखती हैं और संग की इच्छा न होने पर साधारण अवस्था में रहती है।

इसी प्रकार शास्त्र हमें यह भी बतला रहा है कि यदि स्त्री ने शारीरिक शृङ्गार तो किसी कार्य विशेष से

किया हुआ है परन्तु मानसिक शृङ्गार अर्थात् हर्ष और प्रमोद से रहित है तो ऐसी अवस्था में पुरुष को चाहिये कि वह स्वपत्नी संग के भावों का परित्याग कर दे क्योंकि ऐसी अवस्था में संग करना एक अनुचित कार्य और पाप है। इसी प्रकार—

वेद भगवान उपदेश देते हैं कि स्त्री को भी चाहिये कि वह पुरुष से समागम के भाव तभी अपने मन में लाये जब कि पुरुष भी तन और मन के शोकादि रोगों से हर प्रकार से निरोग और स्वस्थ हो।

इस प्रकार जब दोनों दम्पति एक दूसरे की मनोभावनाओं को पूर्ण रूप से समझते हुए गर्भाधान करेंगे तो वेद कहता है कि उनके बल और शक्ति में हानि होने की कोई भी संभावना नहीं रहती तथा दोनों स्त्री, पुरुष अधिक से अधिक आयु तक सुखपूर्वक जीवित रहते हुए संसार में उत्तम ख्याति को प्राप्त करते हैं।

स्वपत्नी संभोग के लाभ

१—केवल सन्तानोत्पत्ति के लाभ को लक्ष्य में रख कर ऋतुस्नान के पश्चात् स्वपत्नी से समागम करना

ईश्वर आज्ञा का पालन होने से ब्रह्म की पूजा और धर्म कार्य हो जाता है।

२—जो संभोग केवल सन्तानोत्पत्ति के विचारों को लक्ष्य में रखकर ही किया जाता है तो उस पवित्र भावना से रज वीर्य भी पवित्र होकर गर्भाशय में पवित्र सन्तान का ही निर्माण होकर घर में शोभाशाली सन्तान का ही आगमन होता है।

३—इसके द्वारा ही दम्पत्तियों में एक विशेष प्रेम का प्रसार होता है जिससे गृहस्थ जीवन सुखपूर्वक व्यतीत होता है।

४—दोनों के नियमपूर्वक संभोग करने से धर्म और स्वास्थ की रक्षा भी विशेष रूप से होती है।

५—बुरे आचार विचार और कर्मों से मनुष्य बचा रहता है।

६—इसके द्वारा ही मनुष्य में सदाचारिता के गुणों की वृद्धि होती है।

७—उस प्राण प्रिय अनमोल सन्तान की प्राप्ति होती है जो कुल को दैदीप्यमान करने वाली हो।

संभोग के समय पुरुष का आवश्यक कार्य

प्रकृति के नियमानुसार जैसे मनुष्य में जब काम वासना की इच्छा जागृत होती है तब उसकी प्रोस्ट्रेट ग्रन्थि तथा उसकी अन्य सहायक ग्रन्थियों से एक प्रकार का श्वेत रस जो कि अति चिकना, तरल और चमकदार होता है निकलने लगता है।

इसी प्रकार स्त्रियों की योनि में भी एक ऐसी आवश्यक ग्रन्थि होती है कि जब उसमें भी मासिक धर्म के शुद्ध होने के उपरान्त काम वासना की स्वाभाविक इच्छा होती है तब उस योनि को तर करने के लिये उस ग्रन्थि में से भी पुरुषों की भांति एक तरल और चिकना पदार्थ प्रवाहित हुआ करता है जिसके द्वारा योनि की आभ्यन्तर दीवारें अति कोमल होकर कुछ फैल सी जाती हैं।

इससे संभोग के समय एक तो स्त्री को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता और दूसरा उसके पतिदेव को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि मेरी भार्या इस समय पूर्ण रूप से संभोग के लिये तैयार है।

याद रहे कि जब तक यह तरल पदार्थ निकल कर योनि की दीवारों को तर कर के उसको मुलायम नहीं कर

देता तब तक संभोग करना एक तो स्त्री पुरुष दोनों के लिये हानिकारक हो जाता है दूसरा जैसा कि पुरुष चाहता है उसे कुछ फल भी प्राप्त नहीं होता। अतः जो पुरुष इस बात का ध्यान नहीं देते वह एक बड़ी भारी भूल में हैं।

बड़े २ डाक्टरों और वैद्य समाज का अनुभव स्पष्ट रूप से बतला रहा है कि स्त्री जाति को प्रायः जितने भी गुप्त रोग होते हैं उनमें ८०-८५ फी सदी रोग केवल इसी लिये आकर उसे घेर लेते हैं कि उनके पति अपनी भोग पिपासा को शीघ्र से शीघ्र बुझाने के लिये संभोग से पहिले अपनी भार्या को उत्तेजित होने का समय तक नहीं देते।

जिसका अन्त में परिणाम यह होता है कि स्त्री को उस समय एक बड़े असह्य कष्ट का सामना करना पड़ता है चाहे वह लज्जा के कारण उस समय अपने मुख से तो कुछ नहीं कहती पर उसे कष्ट अवश्य ही होता है।

इसके अतिरिक्त साथ २ में एक तो योनि की दिवारें भी धीरे २ निर्बल पड़ती चली जाती हैं, तथा दूसरी स्त्री में इस निर्बलता के कारण गर्भ धारण करने

की शक्ति भी समाप्त हो जाती है। अतः पुरुषों को चाहिये कि इस ओर अवश्य ही ध्यान देकर कार्य करें।

संभोग और उसकी समाप्ति के लक्षण

सन्तानोत्पति के लिये स्त्री पुरुष का प्रेमपूर्वक मिलाप होना ही सम्भोग तथा संभोग द्वारा आनन्द प्राप्त करते हुए स्त्री की योनि में वीर्य का क्षरित हो जाना सम्भोग की समाप्ति कहलाती है। क्षरित होने का काल हर एक पुरुष और स्त्री के अपने बलाबल और सद् विचारों पर निर्भर है।

इससे पूर्व भी एक स्थल पर बतलाया जा चुका है कि यह क्रिया सर्वशक्तिमान भगवान ने केवल इसलिये ही करने की आज्ञा दी है कि एक तो मेरे बनाये हुये संसार की वृद्धि होती रहे तथा दूसरा सबके सब जीव अपने कर्म भोग के जीवन-दिन अपने बाल-बच्चों सहित आनन्दपूर्वक बितावें।

इस क्रिया का पूर्ण लाभ तो मनुष्य को तभी हो सकता है जब कि वह संभोग ठीक शास्त्रोक्त विधि द्वारा पूर्ण और प्रेमपूर्वक किया गया हो जिसमें किसी भी प्रकार का शास्त्रीय उलंघन न हो।

याद रहे कि जो संसर्ग अपूर्ण होता है अथवा शास्त्र की विधि विधान का त्याग करके या जो स्त्री की इच्छा के विरुद्ध या उसे द्रवित किये बिना किया जाता है वह लाभ के स्थान पर निम्नलिखित चार प्रकार की हानियाँ पैदा कर दिया करता है।

१—दोनों दम्पत्तियों को प्राप्त होने वाला जो आनन्द मिलना चाहिये वह प्राप्त नहीं होता।

२—दोनों का स्वास्थ बिगड़ जाता है।

३—स्त्री को एक ऐसी बेचैनी और घबराहट आ जाती है जिसका लज्जाशील नारी के लिये वर्णन करना महा कठिन हो जाता है।

४—उस अनियमिता से स्त्री के मन में इतना क्लेश होता है कि उसे उस क्रिया और प्यार करने वाले पतिदेव के प्रति एक प्रकार की घृणा सी उत्पन्न हो जाती है।

इसलिये शास्त्रों का कहना कि जो संभोग विधि-विधान को विचार कर किया जाता है वह दोनों स्त्री पुरुषों के लिये परम सुख, आनन्द, सन्तुष्टि, स्वास्थ और उत्तम सन्तान का दाता बन जाता है।
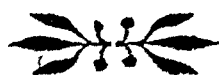
गर्भाधान के लिये प्रथम से ही तैयारी के शास्त्रोक्त तीन समय

हमारे पथ-प्रदर्शक ऋषियों का कहना है कि गृहस्थियों को चाहिये कि वह अपनी सन्तान को उत्तम सुयोग्य, वलवान, निरोग, विचारशील तथा स्वस्थ वनाने के लिये गर्भाधान करने के कम से कम एक मास पूर्व से ही तैयारी कर दें। अर्थात्——

ऐसी शास्त्रोक्त आज्ञाओं और साधनों को अपने व्यवहार में लायें जिनसे कि शरीर, बुद्धि, आचार विचार अति सुन्दर पवित्र हृष्ट, पुष्ट, निरोग तथा स्वस्थ बने रहें।

जिनके फलस्वरूप मनोवांछित और शोभाशाली सन्तान के पूर्ण अधिकारी बन सकें। इसके लिये शास्त्रों ने गर्भाधान की तैयारी के लिये निम्नलिखित तीन समयों का उल्लेख किया है :—

१—कम से कम एक मास पूर्व।

२—दो सप्ताह पूर्व।

३—जिस दिन गर्भाधान करने का पूर्ण रूप से निश्चय हो उस दिन प्रातः काल से लेकर गर्भाधान करने के समय तक।

एक मास पूर्व से तैयारी के चार साधन

१—प्रथम साधन इन पांचों साधनों में जो सब से प्रथम और आवश्यक साधन उत्तम और बलयुक्त सन्तान हित आयुर्वेद शास्त्र ने वर्णन किया है वह है पवित्राहार-विहार का नित्य प्रति सेवन।

आयुर्वेद सदा हमें यही उपदेश देता चला आ रहा है कि हे गृहस्थियो ! यदि तुम यह चाहते हो कि हमारी सन्तान जो भी आये सदा स्वस्थ, निरोग, शक्तिशाली, बलवान, चिरजीवी, सुन्दर और शुद्ध आचार विचार वाली हो तो तुम्हें चाहिये कि सदा ऐसे भोजनों का प्रयोग करो

जो सतोगुणी, पवित्र, पाचक, बलकारक, आयु तथा रक्तवर्द्धक, रुचिकर और विटामिन ई से परिपूर्ण हों।

जिनके द्वारा हम अपनी बुद्धि को इस प्रकार से निर्मल, शुद्ध, और पवित्र बना सकें कि हम अपने अच्छे अथवा बुरे कर्मों के फलों को जान कर अपने हित अथवा अहित की बात को सोच सकें।

क्योंकि उत्तम और सुयोग्य सन्तान प्राप्ति के हित शास्त्रों ने सब से पहिला साधन उत्तम आहार विहार का ही वर्णन किया है अतः हमें इसकी ओर सब से प्रथम ध्यान देना चाहिये। तभी हम अपना और अपनी प्राण प्रिय सन्तान का कुछ भला कर सकते हैं। देखिये—

छान्दोग्योपनिषद अध्याय ७। खंड २६। और मंत्र १ में पाठ आया है कि---

"आहार शुद्धौ सत्व शुद्धि, सत्व शुद्धौ ध्रुवा स्मृति।"

अर्थात् जो मनुष्य नित्य प्रति शुद्ध आहार विहार का प्रयोग करते हैं उनके शरीरों में रहने वाली रस रक्तादि सातों की सातों धातुऐं क्रमशः पवित्र बन कर मनुष्य की बुद्धि को स्वच्छ और निर्मल बना देती हैं।

इसलिये स्मृतियाँ हमें बतला रही हैं कि जो तमोगुण पैदा करने वाले मांसादि अपथ्य, घृणित, अति मलीन

और दुर्गन्ध युक्त पदार्थ हैं उनका सर्वथा परित्याग कर घृत, दूध, मक्खन चावल और उत्तमोत्तम फल आदि आहारों का सेवन कर अपने अन्तःकरण और बुद्धि को शुद्ध बना उत्तम फल और पुरुषार्थ प्राप्त कर हर प्रकार से अपने को शुद्ध और पवित्र बनाते रहो जिससे कि हमारी सन्तान और कुल नित्य प्रति उत्कृष्टता को प्राप्त होते रहें।

२—दूसरा साधन शास्त्रों ने ब्रह्मचर्य व्रत को वर्णन किया है जो कि हमारे शरीर का राजा है। जिसके द्वारा हमारा शरीर हृष्ट पुष्ट और निरोग रहता हुआ उत्तम सन्तान का पूर्ण रूप से हेतु बन सकता है जिसे कोई भी नर नारी अस्वीकार नहीं कर सकता। इस कारण—

कुछ अनुभव कुछ शास्त्र की, बात सुनो दो चार।
उत्तम सन्तति के लिये, जिन से हो उपकार॥
जो चाहो निज गृह में, वीर धीर सन्तान।
रक्षा कर ब्रह्मचर्य की, बने रहो बलवान॥
इसी ब्रह्म आदेश को, वेद रहे बतलाय।
जिससे मानव वाटिका, हरी भरी हो जाय॥
सेवन करें जो वीर्य धन, वही जान धनवान।
वहि ज्ञानी, धर्मी वही, वही देश के प्राण॥

वही जाने ब्रह्मरूप को, वही सन्त का रूप ।
वही सच्चा है देवता, वही जगत का भूप ॥
सुन्दर ज्योति तेज से, जैसे चमके भान ।
ऐसे चमके जग में, आ तव घर सन्तान ॥
प्रभु प्रेम सद ज्ञान में, जीवन सफल लगाय ।
जिसके ज्ञान विज्ञान से, घर भर शोभा पाय ॥
सोय पड़े जो जगत में, आलस चादर तान ।
उन्हें जगाने के लिये, तव घर हो सन्तान ॥

इसलिये जो भी नर नारी इस परम पवित्र धन का जितना भी अधिक से अधिक आदर वा सत्कार करते हैं अथवा इसे सन्मान की दृष्टि से देखते हुए इसकी रक्षा पर विशेष ध्यान देते हैं वह उतना ही अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करते हैं ।

३—तीसरा साधन हमारे धर्म शास्त्रों ने हमारे धर्म और स्वास्थ रक्षा के साधनों में नित्यं प्रति यज्ञ का सच्चा और प्रेमपूर्वक करना वर्णन किया है जिसके द्वारा हम अपने को हर प्रकार से निरोग और स्वस्थ रखते हुए अपनी भावी सन्तान को भी बल तेज और शक्ति से परिपूर्ण और सर्वदा निरोग देख सकते हैं ।

यज्ञ कर्म के प्रति श्री स्वामी दयानन्द जी का वेदोक्त दृष्टान्त

इस यज्ञ के विषय में सत्यार्थ प्रकाश शताब्दि संस्करण के पृष्ठ १९२ पर श्री पूज्यपाद स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने दो वेद मन्त्र उद्धृत किये हैं। कि—

सायं सायं गृह पतिनो अग्नि प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता तथा प्रातः प्रातः गृह पतिनो अग्नि सायं सायं सौमनसस्य दाता। अर्थात् जो संन्ध्या काल में हवन (यज्ञ) किया जाता है वह हुत (अर्थात् अग्नि में डाले हुए) पवित्र पदार्थ प्रातःकाल तक वायु शुद्धि द्वारा सुख-कारी होता है। और

इसी प्रकार जो यज्ञ में डालने योग्य पवित्र पदार्थों द्वारा नित्य प्रति प्रातःकाल यज्ञ (अग्नि होत्र किया जाता है) वह उत्तम सुगन्धित और पुष्टिकारक पदार्थ सायंकाल पर्यन्त प्राकृतिक नियमानुसार जल और वायु को पवित्र बना बल, बुद्धि और आरोग्यता का देने वाला होता है।

इसलिये हे मनुष्यो! दिन और रात्रि की सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और सूर्यास्त के समयों में श्रद्धा

और प्रेमपूर्वक परम पिता परमेश्वर का ध्यान और अग्नि होत्रादि अवश्य किया करो।

यज्ञ करने के प्रति वन्ध्या कल्पद्रुम लेखक के शब्द

इसी प्रकार आयुर्वेद के वन्ध्या कल्पद्रुम नामक पुस्तक में भी एक स्थल पर उत्तम सन्तति प्राप्ति हित ग्रन्थ कर्ता ने लिखा है कि यज्ञ (अग्निहोत्र) करके जो जन समागम (गर्भाधान) करते हैं वह पूर्ण सिद्धि को प्राप्त होते हैं। क्योंकि यज्ञादि करना ईश्वरीय आज्ञा होने से वेदों ने एक परम पवित्र कार्य तथा उत्तम फलदायक सिद्धि का कारण वतलाया है।

जो जन नित्य प्रति यज्ञ करने वाले नहीं या किसी कारण से नित्य प्रति के यज्ञ करने में जो जन किसी भी कारणवश असमर्थ हैं तो उन्हें कम से कम उत्तम सन्तान हित एक मास पूर्व से नित्य प्रति के यज्ञ का कार्य तो अवश्य कर लेना चाहिये जिससे कि घर का वातावरण सुन्दर, निरोग, सुगन्धयुक्त और वलदाता वनकर दोनों दम्पतियों के मनों को पवित्र करता हुआ देह को सुन्दर से सुन्दर बनाने वाला वन जाय।

४—चौथा साधन उत्तम से उत्तम सन्तान प्राप्ति के लिये धर्म शास्त्रों ने सत्संग और स्वाध्याय को बतलाया है। इसलिये यदि हम चाहते हैं कि हमारे घर में बुद्धिमान सदाचारी, ईश्वर भक्त और नाना प्रकार के गुणों से सम्पन्न सन्तान उत्पन्न हो तो हमें अपने जीवन में सत्संग और स्वाध्याय से विशेष प्रेम करना होगा। क्योंकि ये दोनों कर्म हमारे मानव जीवन को उज्ज्वल और परम पवित्र बनाने वाले धर्मशास्त्रों ने वर्णन किये हैं।

आयुर्वेद कहता है कि जो विचारवान गृहस्थी लोग इस प्रकार उपरोक्त चारों प्रकार के साधनों को नियम-पूर्वक साध लेता है उनके घर में उत्पन्न हुआ बालक रूपवान, सत्यवादी, दीर्घायु सन्त भावों से युक्त, निरोग, ऋणमोचन करने वाला होता हैं।

कई घराने देखने में अवश्य आये हैं कि वह विचार वान नर नारी सत्संग और स्वाध्याय से प्रेम रखते हुए नित्य प्रति अपने घर में इनके किये बिना भोजन नहीं करते जिससे उनके घर में जो भी सन्तान आई है वह पुत्र हैं या पुत्रियां, निर्मल बुद्धि से युक्त सदाचारिणी, ईश्वर भक्त तथा अपने माता पिता की पूर्ण रूप से आज्ञा-कारणी आई है।

शुभ कर्मों से शुद्ध रज वीर्य का निर्माण

जिसका प्रधान कारण यह है कि इस प्रकार शुभ कर्मों के करने से पुरुष के शुक्र तथा स्त्री के रज में एक प्रकार की पवित्रता आ जाती है जिससे मनुष्य की बुद्धि निर्मल, स्वच्छ और सात्विकी बन जाती है और सात्विकी बुद्धि में ही सुन्दर विचारों और कर्मों का समावेश हुआ करता है।

इसलिये उत्तम सन्तान पैदा करने के लिये यदि उपरोक्त साधनों में से तुम से यदि किसी भी प्रकार की भूल होती चली आई है या अन्य किसी कारणवश इनको नहीं अपना सके तो अब से ही इन साधनों को सद् सन्तति निर्माण हित कम से कम एक मास पूर्व अवश्य अपनाते हुए अपने तन और मन को बलशाली और पवित्र बना कर देख लें कि इसका तुमको कितना उत्तम फल प्राप्त होता है।

आप भाई बहिनों को यह भली प्रकार से विदित होना चाहिये कि पूर्वकाल में हर एक आर्य स्त्री पुरुष बिना यज्ञ के किये किसी भी कार्य का आरम्भ नहीं किया करते थे। इसलिये वैदिक शास्त्रों ने गर्भाधान करने से

पूर्व यज्ञादि उत्तम कर्मों का विधान बाँधा है। जिससे स्त्री और पुरुष दोनों में से यदि किसी के भी संस्कार किसी भी कारण से अपवित्र हैं तो वह दूर होकर उनके स्थान पर अच्छे और उत्तम संस्कारों की छाप पड़ सके।

परन्तु आजकल नाना प्रकार के गन्दे खान-पान, गन्दी पुस्तकों के पठन तथा गन्दी संगत के कारण हमने अपने पुरातन पवित्र जीवन को इतना पतित बना दिया है कि जिससे जीवन को पवित्र करने वाले यज्ञादि का तो नाम तक नहीं दीखता जिसके परिणाम स्वरूप हम दिन प्रतिदिन नाना प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों के शिकार बनते चले जा रहे हैं।

हमारे पुरातन ऋषि मुनियों के वचन हमें स्पष्ट रूप से बतला रहे हैं कि जो स्त्री जितना भी अधिक से अधिक काल तक उत्तम संस्कार को अपने मन में संचय करती रहती है अथवा इस भावना से अपने मन को परिपूर्ण रखती है कि ईश्वर करे कि मेरे घर जो भी सन्तान आये वह अपूर्व गुणों से युक्त तथा सहस्रो सूर्य के समान तेजस्वी, यशस्वी और गुणवान हो तो निश्चय ही उसके घर गुण युक्त और उत्तम सन्तान का आगमन होता है।

इसलिए शास्त्रों ने नारी जाति को नित्य प्रति सूर्य भगवान के दर्शन करते रहने का उपदेश दिया है।

उत्तम सन्तान हित दो सप्ताह पूर्व से तैयारी

यह बात सिद्ध है कि सुन्दर और स्वस्थ पृथ्वी में डाला हुआ सुन्दर बीज ही उत्तम फल का दाता होता है। शास्त्रों के अध्ययन से हमें इस बात का ज्ञान मिल रहा है कि हमारे प्राचीन समय के आर्य लोग गर्भाधान करने के दिन से कम से कम दो सप्ताह पूर्व से ही अपने शरीर को स्वस्थ, सुन्दर और तेजयुक्त बनाने के लिये वेदोक्त रीति अनुसार अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य का नित्य प्रति सेवन करते थे जिसको कि अधोलिखित वेद मन्त्र स्पष्ट रूप से बतला रहे हैं जिनके परिणाम स्वरूप आने वाली सन्तान भी निरोग, तेज और कान्ति से परिपूर्ण होती थी।

इसलिये दोनों स्त्री पुरुषों को चाहिये कि गर्भाधान करने की निश्चित तिथि से कम से कम पन्द्रह दिन पूर्व ही अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य का सेवन अवश्य करें जिससे कि भावी सन्तान दीर्घायु, बलवान, सुन्दर, निरोग और कान्ति से युक्त हो।

पुत्रेष्टि यज्ञ में गर्भाधान संस्कार हित पढ़े जाने वाले

वेद मन्त्र स्पष्ट रूप से हमें अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्यादि के सेवन के गुणों को अपने मुक्त कण्ठ से बतला रहे हैं अब उन सुन्दर और मनोहर मन्त्रों तथा उनके साथ साथ उनके सरल अर्थों को नीचे प्रकाशित किया जाता है।

इसलिये हमें चाहिये कि अपने मे अग्नि तत्व की वृद्धि करने के लिये धर्मशास्त्रों के कथनानुसार नित्य प्रति अपने घर में देव यज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र करने का अभ्यास रक्खें तथा आहुतियों के देते समय जो स्रुवें में कुछ घृत की बूंदें शेष रह जाती हैं उन्हें जल से परिपूर्ण कांसे के बर्तन में साथ साथ छोड़ते जायं जिससे कि वह जल में गिर कर जल की ऊपरी तह पर जाकर जम जाये।

क्योंकि यज्ञ की मन्द मन्द सुगन्धि जो इस शेष घृत में प्रविष्ट हो जाती है वह आयुर्वेद मतानुसार एक परम पवित्र औषध बनकर मनुष्य को सुख पहुँचाने का एक हेतु बन जाती है।

इसलिये जो पुरुष इस महा सुगन्ध और पुष्टि से परिपूर्ण घृत रूपी औषध की नित्य प्रति शरीर पर मालिश करता है वह नाना प्रकार के आभ्यन्तर और बाह्य चर्म रोगों से सदा मुक्त रहता है।

स्त्रियों के स्वास्थ के लिये आयुर्वेद का आदेश

इसी प्रकार आयुर्वेद स्त्रियों को भी उपदेश देता हुआ कहता है कि जो गर्भवती स्त्री अपनी सहन शक्ति के अनुसार अपने घर का काम काज अपने हाथों से ही करती है उसे उस परिश्रम के कारण निम्नलिखित कई एक लाभ प्राप्त होते हैं।

१—निद्रा सुख से आती है।

२—सदा निरोग्यता बनी रहती है।

३—शरीर का पालन पोषण करने वाली प्राणापान की क्रिया सुचारु रूप से चलती है।

४—क्षुधा भी अपने ठीक समय पर आ कर लगती है।

५—रक्त की वृद्धि और शुद्धि विशेष रूप से होती रहती है।

६—मल त्याग भी यथासमय पर होता है जिससे स्वास्थ में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ने पाती।

७—प्रसव के समय प्रसव सुखपूर्वक होता है।

८—गर्भस्थ बालक भी हर प्रकार से हृष्ट-पुष्ट रहता है।

जिससे कि सगर्भा स्त्री ठीक २८० दिन के उपरान्त ही वीर्यवान और सुन्दर पुत्र को जन्म देती है। ध्यान रहे कि जो विवेक युक्त स्त्रियाँ उपरोक्त परिश्रम द्वारा सदा अपने स्वास्थ का ध्यान रखती हैं आयुर्वेद उनके लिये कहता है कि उस देवी के एक के पीछे दूसरी तीसरी अथवा जितनी भी सन्तानें आती हैं वह सबकी सब वीर्यवान तेज ओज से युक्त तथा दीर्घायु ही आती हैं।

अग्नि वायु चन्द्र और सूर्य सेवन के गुण

प्रथम मन्त्र—ओं अग्ने प्रायश्चित्ते त्वं देवानां प्रायश्चित्तिरसि ब्रह्मणस्त्वा नाथकाम उपधानामि यास्या अपसव्या ननूस्तामस्या अपजहि स्वाहा ॥ १ ॥

द्वितीय मन्त्र—ओं वायो प्रायश्चिते त्वं देवानां इत्यादि आगे पूर्व मंत्र की तरह।

तृतीय मंत्र—ओं चन्द्र प्रायश्चिते त्वं देवानां इत्यादि। आगे पूर्ववत्।

चतुर्थ मंत्र—ओं सूर्य प्रायश्चिते इत्यादि। आगे पूर्ववत्।

उपरोक्त चारों का तात्पर्य—हे सर्वदोष निवारक अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य तुम सब देवताओं के बीच में

दिव्य गुण युक्त पदार्थों में दोषों के नाशक हो, अतः ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला ब्रह्म को मानने वाला मैं तुम्हारा सेवन करता हूँ। तुम इस वधू की जो भी शरीर की विकृति है, उस को दूर करो।

अग्नि के गुण—अग्नि-तत्व को शरीर में धारण करने से नाना प्रकार के रोग दूर होते हैं। घर के काम काज में लगे रहने से शरीर में अग्नि-तत्व उत्पन्न होता है और फिर अग्नि-तत्व के बढ़ने से पसीना आता है, जिसके द्वारा शरीर का मलरूपी विष निकल जाता है। जो स्त्रियां घर के कार्य में लगी रहती हैं, उन्हें कभी मंदाग्नि नहीं होती, नींद भी भली प्रकार से आती है तथा शरीर निरोग रहता है। परिश्रम करने वाली स्त्रियों की कान्ति मनोहर होती है और सुन्दर कांति आरोग्यता का चिन्ह है। जो स्त्रियां घर का काम काज नहीं करतीं अर्थात् अग्नितत्व को ग्रहण नहीं करतीं या अग्नि तत्व को ग्रहण करने में आलस्य अथवा प्रमाद कर जाती हैं वे और उनकी सन्तान सदा रोगी बनी रहती है जैसा कि आज कल बड़े-बड़े घरानों में देखा जाता है।

वायु सेवन के गुण—दूसरे मंत्र में वायु सेवन बतलाया गया है। आज प्रायः भारतवर्ष के डाक्टर कहते

हुए नहीं थकते कि प्रातःकाल शुद्ध और खुली वायु सेवन करने वालों के अनेक रोग दूर हो जाते हैं। शिर और फेफड़े के रोगों के लिए शुद्ध वायु विशेष गुणकारी है।

शुद्ध वायु सेवन करने वालों को शिर पीडा और संक्रामक आदि रोग कभी नहीं दबा सकते।

क्योंकि मल मूत्रादि नाना प्रकार की गन्दगी तथा घर में पत्थर का कोयला आदि जलाने से वायु अपवित्र हो जाती है अतः इसे शुद्ध करने के लिये दोनों समय हवन करने की धर्मशास्त्र ने आज्ञा दी है। तथा—

शुद्धि वायु प्राप्ति के लिये दोनों समय बस्ती के बाहर जंगल अथवा बाग बगीचों में भ्रमण करना अति उपयोगी बतलाया है।

चन्द्र सेवन गुण—तीसरे मंत्र में चन्द्रमा सेवन का आदेश किया गया है। चन्द्रमा का प्रभाव समुद्र के जल पर उसकी वृद्धि के रूप में प्रत्यक्ष देखने में आता है जैसा कि आगे भी उनतालीस पृष्ठ पर लिख आया हूँ। औषधियों में भी रस की वृद्धि का एक हेतु चन्द है। कई फूल और औषधियां शुक्लपक्ष के साथ साथ बढ़ती हैं जैसे सोमलता इत्यादि। स्त्री के गर्भाशय और रुधिर

पर भी चन्द्रमा का प्रभाव पड़ता है। युवा लड़कियों को प्रायः शुक्लपक्ष में ही मासिक धर्म होना आरम्भ होता है। स्त्री तथा पुरुष के शरीर में रक्त आदि धातुओं की वृद्धि तथा शुद्धि में चन्द्रमा की ज्योति ही सहायता देती है। यह तो चन्द्रमा के उस प्रभाव का वर्णन है जो शरीर के भीतर पड़ता है।

वाह्यरीति से चन्द्रसेवन—उसकी प्रभा में कुछ समय चलने, फिरने, खेलने, गाने द्वारा हो सकता है जिससे मन को शान्ति होती है और रात्रि का सृष्टि सौन्दर्य दृष्ट पड़ता है। चाँद की चाँदनी में कभी पढ़ना, टिकटिकी लगाकर उसकी ओर देखना हानिकारक है। इससे आँखों की शक्ति कम हो जाती है। चन्द्रमा की ज्योति का सेवन समुद्र आदि के तट पर सैर करने के लिये जाने से भी किया जा सकता है।

चतुर्थ मन्त्र में सूर्य सेवन का गुण—सूर्य में उष्णता तथा तेज दो पदार्थ हैं। वायु के स्पर्श द्वारा मनुष्य सदैव सूर्य की उष्णता का सेवन करता ही रहता है और इस उष्णता से शरीर के अंग दृढ़ता को प्राप्त होते हैं और स्वेद आता है।

सूर्य सेवन की दूसरी विधि—सूर्य के प्रातःकालीन

तेज को अपने शरीर पर लेने की है। छाती पर इसके तेज के लगने से अत्यन्त लाभ होता है, पीठ पर इसकी तेज किरणें डालने से वायु के रोग दूर होते हैं। प्रातः काल जब सूर्य उदय हो रहा हो उस समय खुली वायु में भ्रमण करने से सूर्य का मन्द मन्द तेज शरीर पर लगता हुआ मुख की कान्ति को उज्ज्वल करता है। जिन घरों में सूर्य का तेज प्रातःकाल अथवा सायंकाल पहुँचता है उनमें कोई रोग नहीं होने पाता। ध्यान रहे कि सूर्य की किरणें आँखों पर न पड़ें अन्यथा नेत्र रोग होने की सम्भावना होती है। जो मनुष्य प्रातःकाल स्नान करके सूर्य की नवीन किरणों को अपने शरीर पर ग्रहण करता है, उसको कोई भी रोग कष्ट नहीं देता। तथा सन्तान भी सुन्दर और तेजस्वी आती है।

दूसरा सूर्य सेवन का यह भी लाभ है कि जैसे ईश्वर प्रकाशस्वरूप होने से सबको ज्ञान रूपी प्रकाश देते हैं। इस प्रकार हमारे शरीर में जो चक्षु रूपी सूर्य सदा प्रकाश का देने वाला है। हमको चाहिये कि सदा उसकी रक्षा करते रहें अर्थात् हमारी सन्तान उत्तम ज्ञान रूपी नेत्रों से युक्त हो। जिससे हम और हमारी सन्तान इस सूर्य (ज्ञान रूपी) चक्षु से भगवान सर्वशक्तिमान के जगत

को समझने वाले बनें अर्थात् सब में आत्म समता की भावना रखने वाले हों।

हमारे मनु जी महाराज तथा अन्य स्वास्थ रक्षा के शास्त्रों का कहना है कि उत्तम सन्तान हित पुरुष अपनी सुन्दर स्त्री से तथा स्त्री अतिवीर्यवान, बलवान और तेज ओज से परिपूर्ण अपने पुरुष से ही समागम करे।

इसलिये वेदों में स्त्री तथा पुरुष दोनों को सुन्दर तथा कान्तिमय बनाने के लिये उपरोक्त अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य तत्वों को अपने में धारण करते रहने का विशेष रूप से आदेश दिया है। जिनके द्वारा स्त्री तथा पुरुष दोनों ही हृष्ट, पुष्ट और सुन्दरता को प्राप्त होते रहें।

आयुर्वेद शास्त्र यह भी बतलाता है कि जहाँ स्त्रियां और पुरुष दोनों अति सुन्दरता को प्राप्त होते हैं वहाँ पर साथ २ में यदि स्त्री वन्ध्या और पुरुष अति निर्बल भी हो तो भी इन चारों के नित्य प्रति सेवन से अति बल और तेज को प्राप्त हो कर स्त्री का वन्ध्यत्व दोष तथा पुरुष के वीर्य दोष धीरे २ नाश हो कर उत्तम सन्तान के योग्य बन जाते हैं।

इसलिये आयुर्वेद ने हर एक नर नारी को इन चारों

के नित्य प्रति सेवन पर विशेष बल दिया है। याद रहे कि जो स्त्रियां या पुरुष खुली वायु में परिश्रम का काम विशेष रूप से करते हैं अथवा चन्द्र की ज्योति में ही नियत समय पर शैया त्याग देते हैं वह अग्नि तत्व को अधिक प्राप्त करने के कारण सदा बलवान बने रहते हैं इसलिये वेदों ने मनुष्य जाति को ब्रह्म-मुहूर्त में शैया त्याग देने का आदेश दिया है।

धनाढ्य घरों में स्त्रियाँ या पुरुष स्वयं परिश्रम का काम न करके केवल नौकरों के सहारे ही अपने घर का काम काज पूर्ण करते हैं। याद रहे कि ऐसे घरों में ही स्त्रियाँ वन्ध्यायें और पुरुष अल्प वीर्य-पाये जाते हैं।

परन्तु आजकल तो भारत की स्त्रियाँ तथा पुरुष पाश्चात्य देशों का अनुकरण करते हुये केवल साबुनों के मलने तथा नाना प्रकार की क्रीमों के लगाने से ही अपनी सुन्दरता को बनाने में नहीं थकते। भला बताइये कि कभी कागज के फूलों से भी सुगन्ध प्राप्त हो सकती है। याद रहे कि जिस प्रकार असली फूल ही सुगन्ध दे सकते हैं इसी प्रकार उत्तम आहार विहार, ब्रह्मचर्य पालन, शुद्ध वायु और परिश्रम से ही मनुष्य को वास्तविक सुन्दरता और बल प्राप्त हो सकते हैं।

इसलिये भाई और बहिनो ! नकली सुन्दरताओं का सर्वथा परित्याग करके वेदोक्त और स्वस्थ रक्षक शास्त्रों में लिखे साधनों से ही अपने को सदा सुन्दर बनाने का यत्न करते रहो।

गर्भाधान के दिन प्रातःकाल से ही तैयारी

ऋतुधर्म से शुद्ध होने के उपरान्त जिस दिन मनोवांछित रात्रि में आप लोगों का केवल सन्तानोत्पत्ति के लिये गर्भाशय रूपी क्षेत्र (भूमि) में बलवान और पवित्र वीर्य रूपी बीज डालने का दृढ़ संकल्प हो अर्थात् केवल यही एक धारणा हो कि आज हम दोनों को ईश्वर कृपा से केवल सन्तानोत्पति के लिये ही प्रेमपूर्वक समागम करना है तो दोनों स्त्री पुरुष को चाहिये कि वह नित्य प्रति की भांति स्नान करके उन वस्त्रों को धारण करें जो अति श्वेत हों तथा उबटन आदि से अपने को सुन्दर बना सबसे प्रथम पुत्रेष्टि यज्ञ करें।

इस यज्ञ के विषय में मनु जी महाराज अपनी पवित्र पुस्तक मनुस्मृति में लिखते हैं कि जो नर नारी गर्भाधान संस्कार के दिन पुत्रेष्टि यज्ञ अवश्य करते हैं, याद रहे कि उनके रज वीर्य मे यदि किसी भी

प्रकार का कोई दोप होता है तो वह दोप दूर होकर उनका रज तथा वीर्य अति पुष्ट हो उन दोनों स्त्री पुरुषों को शक्तिशाली बना देती है। तथा

इस यज्ञ के करने से होमाग्नि में डाले हुए अति सुगन्धित और पुष्टिकारक पदार्थ अग्नि में जलकर गृह भर के वातावरण को पवित्र कर दोनों दम्पतियों के मस्तिष्क और शरीर को बल पहुँचाकर उनको इस योग्य बना देते हैं कि वह अति सुन्दर, कान्ति से युक्त, तेज ओज से परिपूर्ण, शक्तिशाली, बलवान और निरोग सन्तान को उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिये हमारे धर्म शास्त्रों ने इस पुत्रेष्टि यज्ञ को करने का हमारे कल्याण हित अति सुन्दर नियम बाँधा है।

इस विषय की पुष्टि के लिये सुश्रुताकार अपनी सुश्रुत संहिता के शरीर स्थान में लिखते हैं कि—

ततो विधानं पुत्रीय मुपाध्यायः समाचरेत।
कर्मान्ते च क्रमं ह्येनमारभेत् विचक्षणः॥

जिसका स्पष्ट अर्थ यह है कि सबसे प्रथम उपाध्याय को चाहिये कि सन्तान की कामना से दोनों दम्पत्तियों से पुत्रेष्टि यज्ञ कराने के बाद ही अन्य कोई कार्य उत्तम सन्तान हितार्थ करावे।

धर्मशास्त्रों का कहना है कि मनुष्य को चाहिये कि वह अपने कल्याण के लिये जो भी जप, तप, सेवा, दान, ईश्वर प्रार्थना, उपासना आदि कर्म करें वह श्रद्धा और प्रेम के साथ करें क्योंकि जो भी कार्य श्रद्धा और प्रेम के साथ पूर्ण तत्परता से किया जाता है उसकी सिद्धि प्राप्त होने में कोई विलम्ब नहीं लगता। इसलिये उपरोक्त कहे हुए यज्ञ को पूर्ण सच्चा और विश्वास के साथ करें।

अतः उस श्रद्धा और प्रेम की उस वेदोक्त महिमा को वर्णन कर देना अति आवश्यक है जिसके द्वारा हम लोगों को अपनी पवित्र भाव-भावनाओं से अपनी उत्तम सन्तान प्राप्ति की सबसे प्रथम नींव बांधनी है।

श्रद्धा और प्रेम की महिमा

वेद कहता है कि यदि तुम्हें किसी भी प्रकार का सच्चा ज्ञान प्राप्त करना है तो सबसे पहिले तुम्हें उस पर पूर्ण श्रद्धा रखनी होगी क्योंकि शिरोमणि ज्ञान और सौभाग्य की प्राप्ति का मूल कारण एक श्रद्धा को ही वेदों ने कहा है। याद रहे कि जिस मनुष्य की उस कार्य पर श्रद्धा नहीं वह कभी भी उस कार्य को सफल नहीं देख सकता।

इसलिये श्रद्धा, सत्य और प्रेम को धारण करने वाला मनुष्य ही परम पवित्र बुद्धि को प्राप्त होता है। जिससे उसके मन के शुद्ध संकल्प उस श्रद्धा रूपी बुद्धि से ही जागृत होते हैं।

इसलिये मानव समाज जो भी पवित्र भावना रख कर कार्य करता है वह उसका किया पवित्र कर्म उस पवित्रात्मा के लिये परम कल्याणकारी हो जाया करता है।

वेद कहता है कि श्रद्धा, सत्य और निष्ठा से ही मनुष्य समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त होता है अतः जो विचारवान और उन्नतिशील पुरुष होते हैं वह ईश्वरा-देशित अपने समस्त पवित्र कर्त्तव्य कर्मों को दृढ़ता श्रद्धा, और तत्परता से करते हैं जिससे वह बिना ही किसी व्यय के इस लोक तथा परलोक दोनों में ही यश और शोभा को प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार कहा भी है कि—

श्रद्धा निश्चय प्रेम से, किया जाय जो काम।
पूरण में उसके लगे, कौड़ी एक न दाम॥
जहाँ भी होते प्रेम से, सत्संग स्वाध्याय।
सन्त भाव हरि भक्त की, वहीं सन्तति आय॥

शास्त्रों का कहना है कि श्रद्धा में सफलता इस प्रकार निहित है, छिपी हुई है जैसे दूध में माखन, तिल में तेल, और फूलों में इत्र छिपे हुए हैं अथवा जल में प्यास बुझाने की शक्ति और अग्नि में शीत को दूर करने का गुण गुप्त रूप से विद्यमान है। इसलिये श्रद्धा और विश्वास को सफलता प्राप्त करने का वेदों ने एक अमोघ साधन बतलाया है।

साथ २ में वेद यह भी कहता है कि जैसे ज्ञानी जन अपने शूरवीर पुरुषों पर अथवा बच्चे अपने माता पिता पर यह विश्वास रखते हैं कि समय आने पर यह हमारी हर एक प्रकार से रक्षा अवश्य करेंगे। ठीक इसी प्रकार हमें भी अपने पवित्र कार्यों को नियमानुसार यथाविधि करते हुए भी पूर्ण श्रद्धा और विश्वास रखना आवश्यक है कि यह विचार द्वारा किये पवित्र कर्म हमारी मनोकामनाओं को अवश्य पूर्ण करेंगे।

इसलिये जो विचारशील पुरुष वेदोक्त नियमानुसार श्रद्धा से वीर्यदान करने वाले होते हैं आयुर्वेद कहता है कि उनका सदा हित ही होता है अर्थात् उसकी पुत्र प्राप्ति की पवित्र और प्रबल मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है।

वेदों ने यज्ञ कर्म को प्राणिमात्र के कल्याण का एक सर्वोत्तम कारण कहा है, इसलिये जो यज्ञ श्रद्धा और प्रेम के सूत्र में ओत प्रोत करके पुत्र प्राप्ति की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया जाता है वह यज्ञ अपने अपूर्व प्रभाव से उस घर में उस परोपकारी पुत्र का दाता होता है जो जगत पिता के बनाये इस विस्तृत संसार का ऋषि मुनियों की भांति सर्वदा कल्याण करने वाला होता है।

इसलिये मानव समाज के लिये अपने मन में पूर्ण रूप से श्रद्धा का रखना एक धर्म कार्य के नाते अति उत्तम प्रशंसनीय गुण है। इसलिये जो जन श्रद्धा निश्चय सत्य और प्रेम को अपने जीवन में निभाना जानता है वह वास्तव में श्रद्धा का सच्चा उपासक है।

इस प्रकार पुत्रेष्टि यज्ञ कर लेने के उपरान्त दोनों स्त्री पुरुषों को चाहिये कि वे अन्य पाठ पूजाओं के साथ अपने परम पिता परमात्मा के पवित्र द्वार में बैठ कर निष्कपट और सच्चे हृदय द्वारा अपनी उत्तम सन्तान हित पूर्ण बल, शक्ति और पवित्र विचारों की दृढ़ता के लिये प्रार्थना करें। तथा—

अपनी सन्तान को जैसे जैसे आचार विचार, कर्म, धर्म, बल, शक्ति, विद्या और सुन्दर ज्ञान विज्ञान से परि-

पूर्ण चाहते हैं अपनी पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और नम्रता द्वारा उससे वरदान माँगने की प्रार्थना करें। क्योंकि उस परम पिता के द्वार से सच्चे हृदय द्वारा माँगा हुआ पवित्र वरदान कभी खाली नहीं जाता अवश्यमेव मिला करता है।

उत्तम सन्तान हित दोनों स्त्री पुरुषों की भगवद् द्वार में मिश्रित प्रार्थना

विभुं व्यापकं तं परेशं नमामः
अजं शान्तिदं तं वरेण्यं नमामः।
सुखं सूनुदं* स्वतिरूपं नमामः
सदा सच्चिदानन्दरूपं नमामः॥

प्रभुवर तेरे प्रेम सदन में,
विनती करने आये हैं।
स्नेह सुधा से सिञ्चित उरु को
तुम्हें दिखाने आये हैं॥१॥

चिर संचित लेकर आशायें
उर की मधुमय प्याली में।
पुत्र प्राप्ति के मधुर स्वप्न को
तुम्हें सुनाने आये हैं॥२॥

* सूनुदं = लड़के का देने वाला।

व्रत लेकर हम व्रती खड़े हैं
सुन लेना व्रत व्रत-प्रभो ।
शिशु विन सूनी क्रोड़* कथा को
तुम्हें बताने आये हैं ॥३॥
जल विन शोभाहीन सरोवर
पुष्प विना ज्यों डाली है ।
उसी भाव को स्वयं प्रदर्शित
भगवन् करने आये हैं ॥४॥
राम सदृश पा पुत्र कौशल्या
कीर्ति कौमुदी चमक उठी ।
उसी चन्द्र की चारु चन्द्रिका
हम छिटकाने आये हैं ॥५॥
मोहन की मुसकान मधुर पर
ज्यों सारा जग नाच उठा ।
मधुर राग से भरे तार में
नाच दिखाने आये हैं ॥६॥
दयानन्द सा यती संयमी
ब्रह्मचारी सद् पुत्र मिले ।

---

* क्रोड़ = गोद ।

सफल साधना करो प्रभु यह
झाँकी लेकर आये हैं ॥७॥
सुनो दयामय करुणा कर हे
कोई रिक्त नहीं जाता।
सिक्त करें सूखी डाली को
इसे सींचने आये हैं ॥८॥

प्रार्थना

हे आनन्द घन करुणेश वरुणेश ! आपकी विमल विरुदावली-विभूति से समस्त विश्व विभासित हो रहा है।

चर अचर सभी प्राणि-वर्ग आनन्द का अनुभव करते हुये कृतज्ञता प्रकाशित कर रहे हैं।

हे विश्वोद्यान के अलौकिक माली ! आपके इस रम्योद्यान को देख कर कौन ऐसा व्यक्ति या प्राणी होगा जो मुग्ध होकर तल्लीन न हो जाये। पत्ता-पत्ता आपकी अलौकिक सत्ता का पता देता है। प्रत्येक पुष्प और कलियाँ मुस्कराती हुई आपका गुणगान करती हैं।

हे सौन्दर्य निधि ! आपकी सुन्दरता से ही विश्व का कण-कण चमक रहा है आपने ही दाम्पत्य-प्रेम, उत्पन्न कर प्रत्येक गृह को सन्तति सुमनों से सुवासित किया है।

शिशु क्रीडाओं से सदन का कोना कोना सोना सा प्रतीत होने लगता है। भगवन, आज हमभी आपके पुनीत प्रेम से प्रेरित होकर 'सन्तति' की शुभ अभिलाषा लेकर अपने को और अपने कुल को अलंकृत करना चाहते हैं। आप शक्ति, बल और तेज प्रदान करें जिससे सद्-सन्तान को पाकर यश, देश, तथा समाज को सहयोग प्रदान कर राष्ट्र का गौरव बढ़ा सकें।

गर्भाधान के दिन दिन भर का आहार विहार

१—भगवद् द्वार में प्रार्थना करने के उपरान्त महीने भर से ब्रह्मचारी रहा हुआ पुरुष अपने शरीर पर यज्ञशेष घृत का मर्दन कर और घृत क्षीर प्रधान भोजन सेवन करे। क्योंकि शुक्र पोषण के लिये घृत क्षीर आदि के समान सौम्य पदार्थ पुरुष के लिये और कोई नहीं।

इसी प्रकार महीने भर से ब्रह्मचारिणी रही हुई स्त्री अपने शरीर पर तैल का मर्दन करे। तिल तथा उर्द जिसमें अधिक हों उसका भोजन करें क्योंकि उसके आर्तव पोषण के लिए तैल माषादि के समान आग्नेय पदार्थ और कोई नहीं।

अथवा संस्कार विधि के गर्भाधान संस्कार के प्रकरण

में अधोलिखित योग का प्रयोग अवश्य करें जिससे कि इच्छानुकूल उत्तम सन्तान का आगमन हो।

दो खंड आंवा हल्दि, चन्दन, मुरा, कुढ़, जटामांसी, मोरबेल, शिलाजीत, कपूर और नागर मोथा इन सब औषधियों को समान भाग ले चूर्ण बना गूलर की लकड़ी के पात्र में गाय के दूध के साथ मिला, उसका दही जमा और गूलर की लकड़ी की ही मंथनी से मन्थन कर उसमें से मक्खन निकाल और उसका घृत बना कर उसमें सुगन्धिक द्रव्य केशर, कस्तूरी, जायफल, छोटी इलायची जावित्री मिला के अर्थात् सेर भर दूध में १ छटांक पूर्वोक्त औषधियों से सिद्ध घृत में एक रत्ती कस्तूरी तथा एक माशा शुद्ध केसर मिला कर जिस रात्रि में गर्भाधान करना हो, उस दिन शास्त्र के अनुसार यज्ञ करके इस घृत को दम्पती खीर के साथ मिला यथारुचि भोजन करें तो अवश्य ही सुशील, विद्वान, तेजस्वी, सुदृढ़ और नीरोग पुत्र उत्पन्न होगा। यदि कन्या की इच्छा हो तो जल में चावल पका कर उसमें पूर्वोक्त घी मिलावे। इन चावलों को गूलर के एक पात्र में जमाए हुए दही के साथ भोजन करने से उत्तम गुण युक्त कन्या उत्पन्न होगी।

याद रहे कि उपरोक्त संस्कार विधि में लिखे उत्तम

योग के घृत को दो चार दिन पूर्व से ही तैयार करके रख लेना चाहिये ताकि समय पर प्रयोग किया जा सके। यदि उपरोक्त योग का सेवन गर्भाधान करने के निश्चित दिन से पन्द्रह दिन प्रथम से ही आप प्रयोग कर सकें तो सोने पर सोहागे का काम हो जायेगा।

आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि जो कार्य नियमानुसार विधिवत और दृढ़ संकल्प रख कर किया जाता है वह अवश्यमेव फलीभूत होता है।

जिस दिन गर्भाधान करना है उस दिन प्रातः काल जो कुछ भी जल पान करना हो वह सात्विक पौष्टिक, बलवर्धक, आरोग्यप्रद, अति लघु, पाचक रुचिकर स्निग्ध, पराक्रमदाता और शान्ति देने वाला हो। परन्तु रात्रि का भोजन अति हलका तथा शीघ्र से शीघ्र पच जाने वाला होना अति आवश्यक है।

नोट—दोनों समयों के भोजनों में भूल कर के भी कोई ऐसा भोजन न हो जो कि अति उष्ण तीक्ष्ण तैल आदि से बना अथवा अम्ल रस वाला हो क्योंकि दस दिन ऐसे पदार्थों के होने से भोजन की सात्विकता नष्ट होकर रजो गुणता में प्रविष्ट हो जाती है जिससे मनुष्य

के मन तथा वीर्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है ऐसा वैद्यक शास्त्रों तथा अनुभवी महानुभावों का कहना है।

३—दोनों स्त्री पुरुषों को उचित है कि वह यथा-शक्ति समागम से पूर्व तथा समागम के समय पुत्र प्राप्ति की प्रबल इच्छा को अपने मन में अवश्य धारण करते रहें। हमारे पथ प्रदर्शक पूर्वाचार्यों ने अपने जीवन के अनुभव द्वारा यह बात निश्चय कर ली थी कि जिस २ पुरुष वा स्त्री के जैसे २ भी संचित संस्कार होते हैं। वैसे वैसे ही संस्कारों का प्रभाव सन्तान पर ठीक वैसा का वैसा ही पड़ता है क्योंकि मनुष्य जैसे भी संस्कार रखता है उसकी बुद्धि भी वैसी ही सात्विक आदि भावों की बन जाती है। जैसे कहा भी है।

जैसे भाव विचार का, खेलोगे तुम खेल।
वैसी बुद्धि का मिले, आकर तुमको मेल॥

४—दिन भर में जो भी घर के काम काज से रिक्त समय मिले उसमें उन उत्तमोत्तम पुस्तकों का ही केवल स्वाध्याय हो जिन पुस्तकों में भक्तों तथा महापुरुषों का जीवन चरित्र हो। स्त्री को चाहिये कि वह साथ साथ में उन सन्त महात्माओं के चित्रों का भी दर्शन

करती रहे जिनके अनुरूप वह सन्तान चाहती है। इस कारण—

उत्तम भाव विचार के, रहो कमाते काज।
जिससे तुमरे चित्त पर, रहे मनोहर राज॥
जिससे आये गृह में, वह उत्तम सन्तान।
हरि नाम हरि प्रेम से, निज का करे उत्थान॥
और चहे पर उन्नति, विद्वानों का मान।
पूजक सच्चे धर्म की, ऐसी हो सन्तान॥

आत्मवर्ती हृदय सरल, मीठा बोले बोल।
बात करे जो भी वह, प्रथम उसे ले तोल॥
निन्दा मान अपमान से, रहे सर्वदा दूर।
विद्या ज्ञान विज्ञान से, और रहे भरपूर॥
उत्तम रहे चरित्र में, राखे सरल स्वभाव।
नारायण की भक्ति में, रहे बढ़ाता चाव॥
करे जो अपने देश का, प्रेम सहित सम्मान।
धन विद्या धन धर्म के, रहे जो करता दान॥
पर कर्मों को साध कर, चहे तनिक नहीं नाम।
कर्म समस्त रख ब्रह्म के, करे सर्व निष्काम॥

५—शान्तिदायक सुन्दर मनोनुकूल कथा वार्ता को

भी इस दिन श्रवण करना शास्त्रों ने उत्तम सन्तान होने का हेतु कहा है।

६—सुन्दर आकृति वाले सौम्य वचनों से युक्त, सौम्याचार, सौम्य चेष्टा वाले महापुरुषों तथा उत्तम उत्तम प्रकृति की शोभा को बढ़ाने वाली वस्तुओं का दर्शन भी अवश्य करना चाहिये।

७—स्वच्छ वस्त्रों को धारण कर मन को आनन्द देने वाली सुगन्धित पुष्पों की माला और आभूषणों से अपने शरीर को सृष्टि की भांति सुशोभित करें।

क्योंकि उत्तम आहार विहार, उत्तम आचरण, उत्तम वस्तुओं तथा चित्रों का अवलोकन मन में श्रेष्ठ विचार, सद्भावना, शुद्धि तथा उत्तमता का प्रभाव माता के द्वारा आने वाले शिशु पर पड़ता है।

८—सायंकाल का भोजन गर्भाधान करने के समय से कम से कम तीन घन्टे पूर्व ही कर लेना चाहिये। ताकि वह ठीक समय तक पाचन क्रिया द्वारा पच सके।

९—दोनों स्त्री पुरुषों को चाहिये कि उस दिन की वार्तालाप जो कुछ भी हो मधुर, सत्य, प्रिय तथा हास्य युक्त हो।

१०—दोनों नर नारियों को उचित है कि गर्भाधान के दिन भी नित्य प्रति की भांति अग्नि, वायु, चन्द्र और सूर्य का सेवन अवश्य करें क्योंकि इनके सेवन से जो भी सन्तान आती हैं वह तेजोमय, कान्ति से युक्त, बली और अति पराक्रमी होती है जिसका विस्तारपूर्वक वर्णन पिछले पृष्ठों में कर आया हूँ।

इस प्रकार दोनों स्त्री पुरुषों को चाहिये कि वह अपनी आकृति वचन व्यवहार तथा चेष्टा को सौम्य बना प्रसन्न चित्त और एक दूसरे को चाहने वाले यथाविधि उत्तम सन्तान प्राप्ति हित तैयारी करें। इसीलिये तो धर्मशास्त्र कहता है कि—

इस कारण जो जो करो, दिन भर के जो कर्म।
सुन्दर परम पवित्र हों, जिनसे बाढ़े धर्म॥

इसीलिये इन दस नियमों पर दोनों विचारशील पति तथा पत्नी को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये क्योंकि इन नियमों पर न चलने से कुल और धर्म की हानि और इनके पालन में इन दोनों की वृद्धि होती है।

पुरातन शास्त्रों के अध्ययन तथा महापुरुषों के वचनों से यही प्रतीत होता है कि सृष्टि के आदिकाल से लेकर लगभग महाभारत के समय तक जितने भी आर्य अर्थात्

श्रेष्ठ पुरुष थे वे उपरोक्त कहे हुए वेदोक्त दस नियमों की तैयारी के बाद ही सन्तानोत्पत्ति करते थे।

परन्तु आजकल उसी भूमण्डल पर दूषित खान पान तथा गन्दी संगत के कारण कोई भी दम्पति अपनी सन्तान को उत्तम बनाने के लिये तनिक भी ध्यान नहीं देते और न ही ऐसे विचार ही अपने मन में लाते हैं।

हाँ इतना अवश्य है कि बड़े विद्वान जिन्होंने कि कुछ उत्तम सन्तान प्राप्ति के साधनों का अध्ययन किया है वह इस गर्भाधान की वेदोक्त पवित्र नियमों और विधि विधान को जानने के कारण इसकी विशेष क्रिया की आवश्यकता को अवश्य अनुभव कर रहे हैं। परन्तु यह केवल अनुभव करना ही किस काम का जिसको कि व्यवहार में नहीं लाया गया। प्रभु प्रेम प्रकाश के दूसरे भाग में एक स्थल पर एक पाठ आया है कि—

कहना लगे दिवार पर, करने में आनन्द।
कहने से करना भला, करना देत सुगन्ध॥

इसलिये आप सब भाई बहिनों को उचित है कि इस परम पवित्र ईश्वरादेशित गर्भाधान क्रिया की तैयारी जैसा कि प्रथम वर्णन किया गया है कि कम से कम एक मास पूर्व से ही आरम्भ कर दें। यदि ऐसा करना आपकी

किसी भी परिस्थिति के कारण आपको कठिन प्रतीत हो तो जितने दिन भी पूर्व से हो सके तैयारी करें। क्योंकि जितनी भी आप इस कार्य के लिये तैयारी कर सकेंगे उतना ही आपको अधिकाधिक लाभ है। नहीं तो कम से कम गर्भाधान करने के दिन तो अपने को वैदिक शास्त्र के नियमों पर अब यही चलाने का यत्न करें।

याद रहे कि जो जन सन्तान उत्पन्न करने के अंगों से अपने विचार द्वारा विचार न कर उनसे उचित समय तथा नियमानुसार काम नहीं लेते वह दोनों दम्पत्ति एक दिन अपनी महान हानि कर बैठते हैं। अर्थात् या तो वे प्राणप्रिया सन्तान से सदा के लिये हाथ धो बैठते हैं या नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं।

जिसके फलस्वरूप उनका आनन्दमय जीवन नाना प्रकार की चिन्ताओं का स्थान बन जाता है। इसलिये जीवन का आनन्द प्राप्त करने के लिये ईश्वरादेशित उत्तम सन्तति के कार्य को अपनी विचार बुद्धि से विचार कर करना मानव जाति का काम है, जिसकी सरल से सरल विधि आयुर्वेद और धर्म शास्त्रानुसार इसके अगले भाग में वर्णन की जायगी।

विशेष सूचना

सज्जनो !

आप सबकी सेवा में निवेदन है कि इस पूर्व भाग की भाँति अति उपयोगी इसका दूसरा भाग भी शीघ्र से शीघ्र छपकर आप प्रेमियों के कर कमलों में शीघ्र ही पहुँचेगा। जिसमें धर्म शास्त्रानुसार गर्भाधान विधि, गर्भ स्थिति के सरल और स्पष्ट लक्षण, उत्तम सन्तान हित कुछ वेदोक्त नियम, गर्भाधान के समय प्रसन्नता की आवश्यकता, पति पत्नी के प्रेम का सन्तान पर प्रभाव, माता पिता के खान पान और विचारों का गर्भ पर प्रभाव, गर्भवती की असावधानियों का परिणाम, सतोगुण आदि भोजनों का गर्भस्थ बालक पर प्रभाव, माता के सत्संग; स्वाध्याय और जप तप आदि करते रहने से गर्भस्थ शिशु कैसे ऊँचे विचारों तथा संकल्पों वाला बनता है। गर्भवती की चेष्टाओं का गर्भ पर प्रभाव, गर्भवती के लिये अति आवश्यक आदेश, गर्भवती के लिये त्याज्य कर्म, गर्भ की प्रत्येक मास में वृद्धि, दौहृद का महत्व, गर्भ स्थिति में रुकावट डालने वाले साध्यासाध्य आयुर्वेदोक्त कारण,

उत्तम सन्तान हित माता पिता को आदेश, मनचाही सन्तान पैदा करना, अधिक सन्तान से तन मन और धन की हानि, एक ही माता पिता के होते हुये भी सन्तान की भिन्न भिन्न आकृति होने के कारण, गर्भ में पुत्र पुत्री की पहिचान, गर्भ में जोड़े बालकों के बनने का कारण, गर्भ का गर्भ में सूखना, गर्भ स्राव या गर्भपात के आयुर्वेदोक्त प्रधान कारण इत्यादि अनेकानेक अति उपयोगी और सुन्दर सुन्दर विषयों को अति सरल से सरल दृष्टान्तों सहित समझाया गया है।

जिन्हें थोड़े लिखे भाई बहिनें भी सहज ही में जान कर अपनी भावी सन्तान को सुन्दर से सुन्दर निरोग और सदाचारी बना अपने देश और जाति का सच्चे हृदय से बहुत कुछ कल्याण कर पुण्य कर्म के भागी बन सकते हैं।
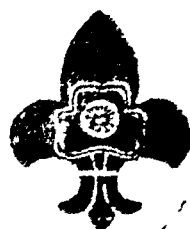
धार्मिक तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

प्रभु प्रेम प्रकाश (प्रथम भाग)

प्रभु प्रेम प्रकाश के प्रथम भाग मे चार खण्ड हैं। प्रथम खंड मे स्तुति, प्रार्थना, विनय, भक्ति प्रेम, ओंकार महिमा आदि विषय तथा द्वितीय खण्ड मे जगत सेवा, पितृ भक्ति गुरु शुश्रूषा, सत्संग दान, दया, धर्म, विद्या और निष्काम कर्मादि अनेक विषय लगभग १२०० दोहो मे वर्णन किये गए है। केवल प्रत्येक विषय पर सार गर्भित प्रकाश ही नही डाला गया अपितुः प्रत्येक विषय के प्रत्येक दोहे तथा शब्द मे ईश्वरीय प्रसाद का प्रेम रूपी मिठास भरा गया है। तीसरे खण्ड मे सासारिक दुखों से छूट कर वास्तविक सुख प्राप्त करने के अनमोल साधन विस्तार पूर्वक दृष्टान्तो सहित प्रश्नोत्तरी की विधि से वर्णन किये गए हैं तथा चौथे खंड मे पचास परम पवित्र उपदेश है। जिसकी पृष्ठ संख्या २५० है मूल्य केवल २) है। सजिल्द २॥)

प्रभु प्रेम प्रकाश (द्वितीय भाग)

प्रभु प्रेम प्रकाश द्वितीय भाग भी प्रथम भाग की भांति तीन पर्वो मे विभक्त है। जिसके प्रथम पर्व मे मनुष्य के मन को आनन्दित करने वाले प्रभु के रसमय मधुर गुण गान के सैकड़ों दोहे है और द्वितीय पर्व मे मानव जीवन के लिये अति उपयोगी शिक्षाऐं पृथक पृथक विषयों मे दोहों के सुन्दर रूप मे हैं तथा

तीसरे पर्व में मनुष्य शरीर की बनावट, उसमें स्थित आत्मा का वर्णन, जीव का कर्म, और कर्म द्वारा प्रारब्ध भोग की अति सुन्दर शैली का वर्णन है जिसके स्वाध्याय से मनुष्य समाज अपने जीवन को शुभ मार्ग पर ले जा कर सुख प्राप्त कर सकता है जिसकी पृष्ठ संख्या ४०० है। मूल्य केवल ३) है। सजिल्द ३॥)

प्रभु प्रेम प्रकाश (तृतीय भाग)

यह भाग भी प्रथम के दोनो भागो की भांति चार श्रोतों से परिपूर्ण है जिनमें मनुष्य नित्य प्रति मानसिक स्नान करके अपने को पवित्र कर सकता है। प्रथम स्रोत द्वारा मनुष्य अपने मन मे स्थित मलिन भावों को प्रभु के परम पवित्र द्वार में बैठ अति विनीत भाव से प्रायश्चित द्वारा प्रार्थना करता हुआ अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को निर्मल बनाता है और द्वितीय स्रोत में नाना प्रकार के अनमोल उपदेश रूपी वाटिका में भ्रमण करता हुआ अपने जीवन को सुधार पथ पर ले जाने में उद्यत होता है और तीसरे स्रोत से मनुष्य वेदादेश अपने कर्तव्य कर्मों को पहिचानता हुआ अपने लिये स्वर्ग का मार्ग साफ करता है तथा चौथे स्रोत में सन्तों के मुखार विन्द से निकले शब्द रूपी सुगन्धित फूलों को सूँघ सूँघ कर अपने को आनन्दित करता है। जिसकी पृष्ठ संख्या ४०० है और मूल्य सजिल्द ३॥)

प्रभु प्रेम प्रकाश (चतुर्थ भाग)

यह भाग उपरोक्त तीनों भागों से अनोखा भाग है जो कि तीन प्रकार के सुन्दर सुन्दर रत्नों से सुसजित है। यह भी पद्य तथा गद्य दोनों मे विभूषित है इसके प्रथम रत्न के पद्य भाग मे यम नियमादि योग के आठों अंगों को भली भांति समझाया गया

है और द्वितीय रत्न मे मनुष्य उन अनमोल रत्नो को प्राप्त करता है जो लाखो रुपये खर्च करने पर भी प्राप्त होने मे असम्भव है तथा तीसरे रत्न को जब मनुष्य उठा कर देखता है तो उसे एक अनोखे प्रकाश का प्रतिबिम्ब प्रतीत होता है जिसके द्वारा मनुष्य स्वर्ग से भी ऊँचा उठ कर मोक्ष धाम के मार्ग पर दौड़ पड़ता है जो कि मनुष्य जीवन का ध्येय है। पृष्ठ संख्या इसकी भी ४०० है और मूल्य भी केवल वही ३) सजिल्द ३॥)

नोट—इस प्रकार ये चारों भाग ५००० दोहो से सुसज्जित हो मनुष्य को ज्ञान आनन्द और शान्ति देते हुये भगवान सच्चिदानन्द के सच्चे प्रेम में लीन कर देते है ऐसी मधुर और मनोहर पुस्तक के नित्य प्रति पाठ करने से आत्मा उन्नति की ओर अग्रसर होती हुई प्रभु प्रेम मे लीन होने का पूर्ण यत्न करती है और उन्हे पढ़ने वाला उसमे ऐसा तन्मय हो जाता है कि पाठ करने से मन हटना ही नही चाहता, जीह्वा उसके मनोहर शब्दों को उच्चारण करने मे थकती नही तथा कान उसके प्रेम भरे शब्दो को बार बार सुनने को उत्सुक रहते है। यहाँ तक कि श्रोतागण भी अपने प्रभु की स्तुति को सुन कर प्रभु प्रेम मे लीन हो जाते हैं।

परोपकार महिमा

यह पुस्तक वह पुस्तक है जो कि मनुष्य को अपने वास्तविक ईश्वरादेशित कर्तव्य कर्म मे जिसे लोग अज्ञानता के कारण स्वार्थ और लोभ वश भूल बैठे है लगा कर सच्चा मनुष्य बना समस्त मानव जीवन को कुन्दन करती हुई भगवान सच्चिदानन्द की परम पवित्र गोद मे ले जाकर बिठला देती है जिसकी पृष्ठ संख्या १५० के लगभग है। मूल्य १।)

पुरुष रोग प्रकाश

जिसमे पुरुष जाति को होने वाले सभी के सभी गुप्त तथा कठिन रोगों का निदान, कारण, लक्षण और चिकित्सा का विस्तार पूर्वक दृष्ठान्तों सहित विशेष रूप से वर्णन किया गया है जिससे कि सर्व साधारण जनता स्वयं ही थोड़ दामों मे अपने घर मे बना कर पूर्ण लाभ उठा अपने जीवन को सुखी बना सके। पुस्तक अत्यन्त सरल और सुगम है इसके दोनो भागों की पृष्ठ संख्या २५६ है और प्रत्येक भाग का मूल्य एक एक रुपया है जिससे सबके सब लाभ उठा सके। सजिल्द दोनो भाग २॥)

स्त्री रोग प्रकाश

इस पुस्तक मे स्त्री जाति को होने वाले सभी गुप्त तथा कठिन रोगों का निदान, कारण, लक्षण तथा चिकित्सा विस्तार पूर्वक दी गई है जिसे पढ़ कर प्रत्येक स्त्री अपने रोगो को भली प्रकार के समझ अपनी चिकित्सा स्वयं कर सकती है तथा थोड़ी लिखी पढ़ी स्त्रियॉ भी इसे पढ़ कर इसके द्वारा अपने जीवन को सुखमय बना सकती है। यह पुस्तक भी अत्यन्त सरल और सुगम लिखी गई है ताकि कन्याये भी पढ़ कर समझ सके क्योंकि कन्याओं को भी एक दिन माता बनना है इसलिये इस पुस्तक को कन्याओं को भी पढ़ना चाहिये। पृष्ठ संख्या १६० छपाई और कागज उत्तम होने पर भी मूल्य केवल १॥)

गर्भाधान प्रकाश

इस अमूल्य पुस्तक मे रजस्वला से लेकर बालक पैदा होने तक सभी अवस्थाओ पर प्रकाश डाला गया है जैसे रजस्वला के

समय अति सावधानता, गर्भवती का कर्तव्य, गर्भ मे बालक की बनावट, निषिद्ध तिथियों यथा रात्रियों मे गर्भाधान से हानि, माता पिता की चेष्टाओ का गर्भ की पुष्ट करने के अति सरल उपाय आदि सभी उपयोगी बातों का विस्तृत वर्णन है। जिसे पढ़ कर प्रत्येक गृहस्थी ईश्वर भक्त, परोपकारी, विद्वान, सुन्दर और दीर्घजीवी सन्तान उत्पन्न कर अपने देश और जाति का कल्याण कर सकते है। मूल्य १।)

सत्य दोहावली

इस पुस्तक मे प्रभु प्रेम प्रकाश प्रथम भाग से कुछ ज्ञान तथा शिक्षा प्रद दोहे निकाल भावार्थ सहित पृथक करके छाप दिये है जिस से प्रत्येक नर नारी इसे पढ़ अपने कर्तव्य कर्म को जान सुख का जीवन व्यतीत कर सकता है मूल्य केवल ।।)

आनन्द वाटिका

इससे भी प्रभु प्रेम प्रकाश प्रथम भाग से कुछ भक्ति इस के दोहे निकाल कर पृथक छाप दिये है जिसे थोड़े धन वाले भी भगवद् प्रेम का आनन्द लूट कर शान्ति प्राप्त कर सके। मूल्य केवल ।)

सेवा के मधुर फल

इस पुस्तक से अध्ययन के प्रत्येक नर नारी को उन फलो की प्राप्ति होती है जिनके द्वारा मनुष्य अपने जीवन मन और आत्मा को सर्वदा पुष्ट रख सकते हैं। मूल्य केवल ।)

चार्ट

इन उपरोक्त पुस्तकों के अतिरिक्त निम्नलिखित चार्ट भी उत्तम कागज और उत्तम छपाई द्वारा छप कर तैयार हैं जिन्हें कि प्रत्येक गृहस्थी अपने घरों में टांग कर जीवन को सुन्दर और उज्वल बनाने वाली शिक्षायें प्राप्त करते हुये घर की शोभा को बढ़ा सकते हैं।

१ विवाह के समय माता को पुत्री का उपदेश	=)॥
२ ,, ,, पिता ,, ,,	−)।
३ ,, ,, ससुर ,, जमाता को उपदेश	−)।
४ सखियों का प्रेमालाप	−)॥
५ पति के लिये स्त्री की भगवद् द्वार में प्रार्थना	−)।
६ भार्या हित पति की प्रार्थना	−)।
७ पिता का पुत्र को उपदेश	−)।
८ ईश्वर प्रार्थना	−)।
९ भक्ताभिलाषा	−)।
१० दान से कल्याण	=)॥
११ गायत्री महिमा	=)॥
१२ सत्संग महिमा	−)।
१३ ब्रह्मस्तुति	−)।
१४ सुख के साधन	−)।
१५ आत्म ज्ञान	−)।
१६ सेवा परमोधर्म	−)।